वर्ष – 5, अंक – 3,
जुलाई-सितम्बर, 2025

RNI पंजीकरण संख्या - UPHIN/2021/89341
सहयोग राशि : 60.00

PEER REVIEWED (REFEREED) MAGAZINE

आंबेडकरवादी साहित्य

आंबेडकर-दर्शन पर आधारित त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका

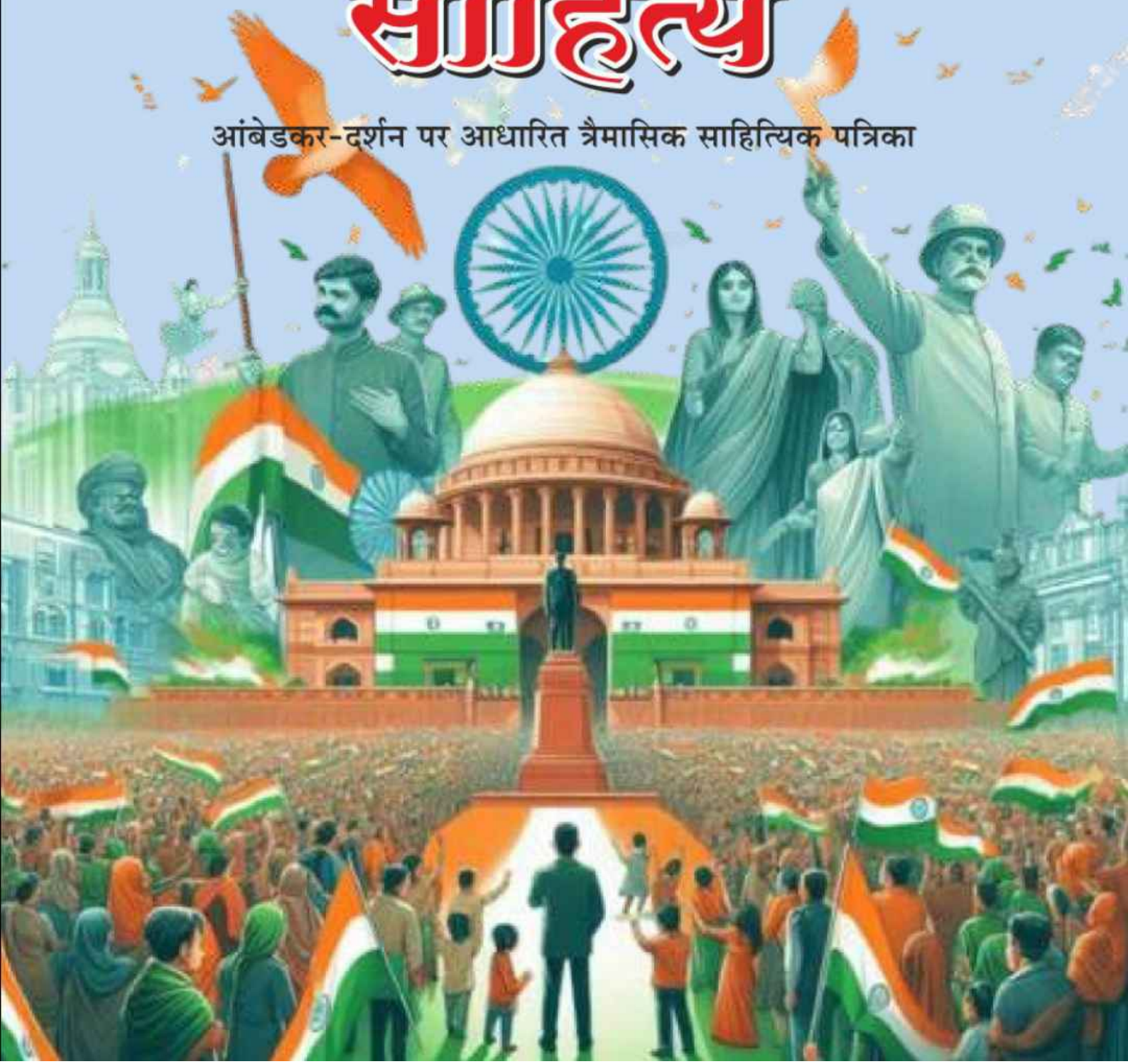

समस्त देशवासियों को

स्वतंत्रता दिवस (15 अगस्त)

की

हार्दिक बधाई एवं मंगल कामनाएं

श्यामलाल राही
वरिष्ठ साहित्यकार एवं संरक्षक GOAL, बरेली (उ.प्र.)

डॉ. नविला सत्यादास
सेवानिवृत्त सह प्राध्यापिका एवं संरक्षक GOAL, पटियाला (पंजाब)

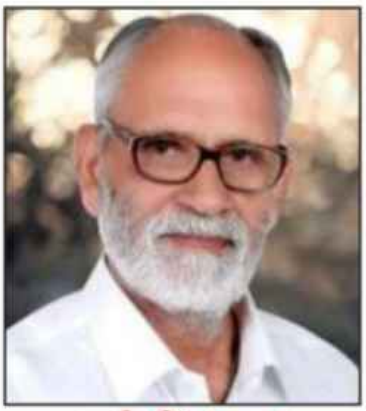

रघुबीर सिंह 'नाहर'
वरिष्ठ आंबेडकरवादी साहित्यकार एवं सदस्य GOAL, नारनौल (हरियाणा)

डॉ. राम मनोहर राव
वरिष्ठ आंबेडकरवादी साहित्यकार एवं अध्यक्ष GOAL, बरेली (उ.प्र.)

जालिम प्रसाद
शिक्षाविद एवं वरिष्ठ साहित्यकार, गोरखपुर (उ.प्र.)

पिंटू कुमार गौतम
जादूगर एवं सदस्य GOAL, गाजीपुर (उ.प्र.)

PEER REVIEWED (REFEREED) MAGAZINE

RNI पंजीकरण संख्या - UPHIN/2021/89341

आंबेडकरवादी साहित्य

आंबेडकर-दर्शन पर आधारित त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका

आरंभ वर्ष : अक्टूबर-दिसम्बर 2021 ❖ आवृत्ति : त्रैमासिक ❖ विषय : साहित्य ❖ भाषा : हिन्दी

वर्ष - 5, अंक - 3, जुलाई-सितम्बर, 2025

संपादक -

देवचंद्र भारती 'प्रखर'

मो.- 9454199538
ambedkarvadisahitya@gmail.com

संपादक मंडल-

डॉ0 दत्तात्रय मुरुमकर
प्राध्यापक हिन्दी विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय
कलिना, सांताक्रूज (पूर्व), मुंबई-400098
dmurumkar.hindi@mu.ac.in

डॉ0 प्रमोद रंजन
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, असम विश्वविद्यालय
दिफू कैंपस, दिफू, असम 782462
pramod.ranjan@aus.ac.in

डॉ0 गाजुला राजू
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश 211002
raju.g@allduniv.ac.in

डॉ0 जनार्दन
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश 211002
janardan@allduniv.ac.in

डॉ0 बिजय कुमार रबिदास
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश 211002
bkrabidas@allduniv.ac.in

संरक्षक मण्डल-

डॉ0 नविला सत्यादास
संरक्षक GOAL एवं सेवानिवृत्त सह-प्राध्यापिका व विभागाध्यक्ष
राजकीय महींद्र महाविद्यालय, पटियाला, पंजाब

श्यामलाल राही उर्फ 'प्रियदर्शी'
संरक्षक GOAL एवं सेवानिवृत्त उपशिक्षा निदेशक तथा
वरिष्ठ साहित्यकार, बरेली, उत्तर प्रदेश

डॉ0 राम मनोहर राव
अध्यक्ष GOAL एवं वरिष्ठ आंबेडकरवादी साहित्यकार
बरेली, उत्तर प्रदेश

रघुबीर सिंह 'नाहर'
कानूनी सलाहकार GOAL एवं वरिष्ठ आंबेडकरवादी साहित्यकार
अलवर, राजस्थान

डॉ0 रमेश कुमार
उपाध्यक्ष GOAL एवं सेवानिवृत्त आयकर आयुक्त,
अहमदाबाद, गुजरात

स्वामी एवं प्रकाशक देवचंद्र भारती,
मुद्रक गौतम प्रिंटर्स, सी.27/111-बी,
जगतगंज, वाराणसी, (उ.प्र.)-221002 से
मुद्रित एवं शी 19/100, भीम नगर कालोनी
सनबीम वरुणा के पास, कचहरी, वाराणसी
(उ.प्र.) 221002 से प्रकाशित
संपादक- देवचंद्र भारती।

आंबेडकरवादी साहित्य

आंबेडकर-दर्शन पर आधारित त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका

पत्रिका के बारे में : यह पत्रिका वर्ष 2021 से, हिंदी भाषा तथा साहित्य विषय में प्रकाशित होती है।
पत्रिका का उद्देश्य है – साहित्य के माध्यम से मानवता, सामाजिकता, राष्ट्रीयता और वैज्ञानिकता का प्रचार-प्रसार करना।

परामर्श मण्डल -

डॉ0 प्रीति आर्या
प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग,
एस.एस.जे. विश्वविद्याल परिसर,
अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

डॉ0 मुकुन्द रविदास
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
वी.बी.एम. कोयलांचल वि.वि.,
धनबाद, झारखण्ड

डॉ0 दुर्गेश कुमार राय
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
के.जी.के. (पी.जी.) कॉलेज,
मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश

डॉ0 प्रवेश कुमार
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
शहीद हीरा सिंह राजकीय महावि.
धानापुर, चन्दौली, उत्तर प्रदेश

डॉ0 रवि रंजन
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
धर्म समाज संस्कृत कॉलेज,
रामबाग, मुजफ्फरपुर, बिहार

डॉ0 नूतन कुमारी
सहायक प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग,
एम.डी.डी.एम. कॉलेज,
मुजफ्फरपुर, बिहार

डॉ0 बी.आर. बुद्धप्रिय
सेवानिवृत्त प्राचार्य एवं
वरिष्ठ आंबेडकरवादी साहित्यकार,
बरेली, उत्तर प्रदेश

संपादकीय कार्यालय -
शी 19/100, भीम नगर कालोनी
सनबीम वरुणा के पास, कचहरी,
वाराणसी, उत्तर प्रदेश 221002

विषय सूची -

संपादकीय
स्वतंत्रता दिवस मनाने का औचित्य
– देवचंद्र भारती 'प्रखर'/05

शोध-पत्र :
भारतीय जातिवाद का डॉ.भीमराव अम्बेडकर के दृष्टिकोण के आधार पर ऐतिहासिक एवं परम्परागत अध्ययन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में
– प्रेमसिंह दौलिया/06

स्वाधीनता आंदोलन और खड़ी बोली हिंदी का साहित्य
– देवचंद्र भारती 'प्रखर'/16

बाबासाहेब डॉ.भीमराव अंबेडकर के चिंतन में धर्म
– डॉ. भारती सागर/21

कबीर के दोहों में जीवन-दर्शन आध्यात्मिकता और यथार्थ का संगम
– मोनिका पटेल/27

मानव मूल्य के पोषक : कबीरदास
– परमजीत कुमार पंडित/31

संत कबीर के पदों में प्रतीकात्मकता और भाषा शिल्प : एक अनुशीलन
– कुमारी शिखा/38

वर्तमान सन्दर्भ में कबीर के आध्यात्मिक विचारों की प्रासंगिकता
– डॉ. पूनम प्रजापति/42

'आंबेडकरवादी साहित्य' बाबा साहेब डॉ. भीमराव आंबेडकर की मानवतावादी विचारधारा के प्रचार-प्रसार हेतु समर्पित है। डॉ. आंबेडकर की विचारधारा का स्वरुप अत्यंत व्यापक है, जिसमें तथागत बुद्ध, संत कबीर, संत रविदास, ज्योतिराव फुले, नारायण गुरु, संत गाडगे और पेरियार रामास्वामी आदि महापुरुषों के दर्शन का समावेश है। अतः उक्त बात को ध्यान में रखते हुए आंबेडकरवादी साहित्य का घोषणा-पत्र तैयार किया गया है, जो अग्रलिखित है।

आंबेडकरवादी साहित्य का घोषणा-पत्र

आंबेडकरवादी साहित्य के घोषणा-पत्र में आंबेडकरवादी साहित्य (पत्रिका) का उद्देश्य निहित है।

'आंबेडकरवादी साहित्य' से संबंधित स्मरणीय बिंदु निम्नलिखित हैं-

1. आंबेडकरवादी साहित्य 'आंबेडकरवाद' का पोषक है। आंबेडकरवाद का अर्थ है- आंबेडकर का कथन यानी आंबेडकर - दर्शन। आंबेडकर-दर्शन डॉ. आंबेडकर की विचारधारा का समग्र रुप है, जिसमें बुद्ध वाणी, रविदास वाणी आदि का भी समावेश है।
2. अनीश्वरवाद, अनात्मवाद, दुखवाद, प्रतीत्य-समुत्पाद, समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, न्याय, प्रज्ञा, करुणा, शील, मैत्री आदि सभी सिद्धांत एवं मानवीय मूल्य आंबेडकर-दर्शन के अंग हैं। अतः इन सभी का आंबेडकरवादी साहित्य से घनिष्ठ संबंध है।
3. आंबेडकरवादी साहित्य सामाजिक, शैक्षिक, राष्ट्रीय एवं वैज्ञानिक चेतना का प्रेरक है।
4. आंबेडकरवादी साहित्य समाज और संस्कृति से संबंधित तथ्यपूर्ण एवं प्रामाणिक बातों तथा घटनाओं के वर्णन हेतु प्रतिबद्ध है।
5. आंबेडकरवादी साहित्य तथागत बुद्ध की प्रेरक वाणी 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, लोकानुकंपाय' पर आधारित है। 'मूलनिवासी' अथवा 'पंद्रह-पचासी' की अवधारणा से इसका कोई संबंध नहीं है।
6. आंबेडकरवादी साहित्य में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के सम्यक साहित्य को सम्मिलित किया जा सकता है, चाहे उसका रचनाकार किसी भी वर्ग, किसी भी जाति, किसी भी धर्म का हो।
7. आंबेडकरवादी साहित्य भारतीय संविधान में वर्णित सम्यक प्रावधानों के अनुरुप रचा जाने वाला साहित्य है।
8. आंबेडकरवादी साहित्य किसी धर्म अथवा दर्शन की निंदा नहीं करता है, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर उनका सम्यक विवेचन करता है।
9. आंबेडकरवादी साहित्य में तथागत बुद्ध, संत कबीर, संत रविदास, ज्योतिराव फुले, नारायण गुरु, संत गाडगे, पेरियार रामास्वामी और डॉ. आंबेडकर आदि सत्यशोधक महापुरुषों की सम्यक वाणी का अंतर्भाव है।
10. आंबेडकरवादी साहित्य आंबेडकरवादी चेतना के साहित्यकारों, शिक्षकों, समाजसेवकों एवं संस्कृति के संरक्षकों का प्रशस्ति-पत्र है।

सम्यक दृष्टि सही उद्देश्य सार्थक कार्य

Genuine Organization of Ambedkarite Literati - GOAL

आंबेडकरवादी विद्वज्जनों का विशुद्ध संगठन

प्रधान कार्यालय - 308, आंबेडकर चौक, मुनिरका, नई दिल्ली- 110067

संरक्षकगण - डॉ0 नविला सत्यादास (पंजाब), श्यामलाल राही (बरेली, उत्तर प्रदेश)

अध्यक्ष	उपाध्यक्ष	महासचिव	कोषाध्यक्ष
डॉ0 राम मनोहर राव (बरेली, उत्तर प्रदेश)	डॉ0 रमेश कुमार (अहमदाबाद, गुजरात)	देवचंद्र भारती 'प्रखर' (चंदौली, उत्तर प्रदेश)	डॉ0 सुरेश सीरम गाजीपुरी (गाजीपुर, उत्तर प्रदेश)

सह-सचिव	कानूनी सलाहकार	लेखा परीक्षक
सुरेश कुमार राजा (बाँदा, उत्तर प्रदेश)	रघुबीर सिंह 'नाहर' (अलवर, राजस्थान)	अश्वनी कुमार (लखनऊ, उत्तर प्रदेश)

सदस्यगण - डॉ0 बी.आर.बुद्धप्रिय (बरेली, उत्तर प्रदेश), डॉ0 मुकुंद रविदास (झारखण्ड), डॉ0 परसराम रामजी रगडे (महाराष्ट्र), भिक्खु संघविजय (बिहार), मनोहर लाल प्रेमी (लखनऊ, उत्तर प्रदेश), राधेश प्रताप 'विकास' (इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश), कर्मशील भारती (दिल्ली), अभय प्रताप सिंह (दिल्ली), पिंटू कुमार गौतम (गाजीपुर, उत्तर प्रदेश), कैप्टन लाल बिहारी प्रसाद (कुशीनगर, उत्तर प्रदेश), भीमराव गणवीर (महाराष्ट्र), डॉ0 पप्पू राम सहाय (झाँसी, उत्तर प्रदेश), राजाराम वर्मा (गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश)

सम्पर्क सूत्र- 9454199538, 9452846472 • E-mail : genuineorganization@gmail.com

स्वतंत्रता दिवस मनाने का औचित्य

समस्त भारतवासी प्रति वर्ष 15 अगस्त को 'स्वतंत्रता दिवस' के रूप में उत्सव मनाते हैं। क्योंकि इस दिन औपनिवेशिक भारत को ब्रिटिश शासन से मुक्ति मिली थी। प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या 15 अगस्त 1947 से पूर्व भारत के समस्त निवासी अंग्रेजों के गुलाम थे। उत्तर है – नहीं। इस भारत का एक विशाल वर्ग ऐसा था, जो अंग्रेजों के गुलामों का भी गुलाम था। भारत की विशाल जनसंख्या वाला वह वर्ग इतिहास में 'अछूत–वर्ग' के नाम से चिन्हित किया गया है। उसी वर्ग में महान विद्वान एवं सामाजिक चिंतक डॉ. भीमराव आंबेडकर का जन्म हुआ था। जिस समय अंग्रेजी शासन से आजादी पाने के लिए इस देश के बुद्धिजीवी प्रयत्न कर रहे थे, उस समय डॉ. आंबेडकर अछूतों के भविष्य को लेकर चिंतित थे। उनका कहना था कि, ''अन्य लोगों की तरह हमें (अस्पृश्यों को) भी आजादी चाहिए। हमें किसी की भी – विदेशियों की अथवा स्वदेशियों की गुलामी नहीं करनी। हमें आजादी चाहिए। लेकिन उसी के साथ हमें प्रजातंत्र भी चाहिए। सत्ता अगर कुछ गिने–चुने लोगों के हाथ गयी, तो इसका कोई भरोसा नहीं कि हमारे अच्छे दिन आएंगे।'' (बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर संपूर्ण वांग्मय, खंड 40, पृष्ठ 37, प्रकाशक – डॉ. आंबेडकर प्रतिष्ठान नई दिल्ली, पहला संस्करण 2019) जब डॉ. भीमराव आंबेडकर को भारतीय संविधान की 'निर्मात्री समिति' का अध्यक्ष चुना गया, तो उन्हें अछूत–वर्ग को न्याय दिलाने का अवसर मिल गया।

डॉ. भीमराव आंबेडकर ने पूरी ईमानदारी से भारतीय संविधान का सृजन किया। उन्होंने अछूत–वर्ग एवं अन्य भारतवासियों के हितों को ध्यान में रखकर संविधान में मौलिक अधिकारों का समावेश किया। भारतीय संविधान में वर्णित मौलिक अधिकार सभी भारतवासियों को समता, स्वतंत्रता और न्याय का अधिकार प्रदान करते हैं। विडंबना यह है कि भारतीय संविधान लागू होने के बाद भी इस देश का बहुसंख्यक वर्ग दासता का जीवन जीने के लिए विवश है। अत: 'स्वतंत्रता दिवस' मनाने का औचित्य तभी है, जब उस विशाल वर्ग को स्वदेशियों की गुलामी से पूरी तरह मुक्ति मिल जाए।

– देवचंद्र भारती 'प्रखर'

भारतीय जातिवाद का डॉ.भीमराव अम्बेडकर के दृष्टिकोण के आधार पर ऐतिहासिक एवं परम्परागत अध्ययन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

– प्रेमसिंह दौलिया, सहायक आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग,
राजकीय कन्या महाविद्यालय शिवगंज, सिरोही, राजस्थान, भारत

"प्रत्येक समय में भेद-भाव पर आधारित जातिमूलक व्यवस्था का विरोध हुआ है। गौतमबुद्ध, संत कबीरदास, गुरूनानकदेव ज्योतिराव फुले, महात्मा गांधी, डॉ भीमराव अंबेडकर, आचार्य, चार्वाक, नेहरू, राममनोहरलोहिया, दयानन्दसरस्वती, विवेकानन्द, कौटिल्य, रामदास, रविदास, रैदास, अर्जूनदेव, गोविन्द रानाडे, आदि महापुरूषों ने एवं राजनेताओं एवं संतों के द्वारा समाचार पत्रों पत्रिकाओं एवं उनके द्वारा रचित पुस्तकों में राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत हुई हैं।"

सारांश

प्राचीन भारत के इतिहास की तरह ही भारतीय वर्णव्यवस्था, जातिभेद और अस्पृष्यता का प्रारंभिक काल भी समय के कुहासे में विलुप्त है। उसके प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। ऐसे में उसके उदय और विकास के बारे में जानकारियाँ परोक्ष प्रमाणों पर ही निर्भर है। विश्वसनीयता और व्याख्याओं के बारे में इतिहासकारों एवं समाज-विज्ञानियों में गहरे मतभेद हैं। किंतु इससे उनका महत्व कम नहीं होता। कारण कि ''हमारे इतिहास और संस्कृति की ऐसी कोई भी व्याख्या विचार योग्य नहीं हो सकती, जिसमें जातिव्यवस्था की भी व्याख्या सम्मिलित न हो।'' पारंपरिक हिंदू समाज तो अस्पृश्यता के विभिन्न रूपों में भी भेद करता रहा है। कुछ विषेश अवसरों पर ब्राहाण पुरोहित भी अस्पृश्य होता है। इस प्रकार से ऋतुकाल में स्त्रियाँ भी अस्पृश्य होती थी। इसी तरह मृत्यु और जन्म से सम्बन्धित अशौच काल में भी व्यक्ति को छूना वर्जित है। किंतु अस्पृश्यता के ये सभी रूप अस्थायी हैं। दलितों पर लगाया हुआ अस्पृश्यता का जन्मजात कलंक स्थायी और अमिट है। यह साधारण जल से ही नहीं, गंगास्नान से भी पूरी तरह से नहीं मिटता है; न ही यह अस्पृस्यता स्वर्ण छूआए जल के छींटों से धुलती है,जो कि कुछ एक अन्य अस्पृश्यताओं से शुद्धि के लिए धर्मषास्त्रों में बताया गया उपाय है। दूसरी व्यवस्था इन नियमों की अवहेलना करनेवालों के लिए दंड-विधान थी। यह स्थायी अस्पृश्यता संतों की सीख, समाज -सुधारकों के आंदोलन, महात्मा गांधी के छूआछूत मिटाने के अभियान, डॉ.अम्बेडकर के नेतृत्व में दलितों की पृथक राजनीतिक शक्ति के प्रादुर्भाव और भारतीय गणतंत्र के संविधान द्वारा अस्पृश्यता के उन्मूलन तथा उसे दंडनीय अपराध घोषित कर देने के बावजूद आज भी भारतीय सामाजिक जीवन की कटु वास्तविकता है।

मुख्य शब्द

जातिभेद, अस्पृश्यता, परम्परागत, ऐतिहासिक विकास वर्ण व्यवस्था, मिथक ,धर्मशास्त्र, वैदिकोत्तरयुग, दण्डव्यवस्था, धर्मसुधार आन्दोलन निषेधशास्त्र, भक्तिधारा, चोखामेला संत भला समाज सुधार आन्दोलन, सांस्कृतिक क्रान्ति , राष्ट्रीय जागरण , साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व।

प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय समाज में वर्ण-व्यवस्थाओं ,जातिवाद एवं अस्पृश्यता प्रारंभिककाल से अस्तित्व में थे। आधुनिक भारत में 19 शताब्दी की शुरूआत में मनुस्मृति और ऋग्वेद जैसे धर्मग्रथों की सहायता से जाति का विकास हुआ है। जाति+वाद- जातिवाद उन दो शब्दों से मिलकर बना है जातिवाद एक प्रकार से अपनी जाति को श्रेष्ठ मानने का सिद्धांत है इसमें दूसरी जाति को हीन माना जाता है। यह संकीर्ण धारणा है। और अपनी जाति के प्रति निष्ठा रखने की भावना ही जातिवाद कहलाता है। और जाति शब्द का उदय पुर्तगााली भाषा के शब्द 'कास्टा' से हुआ है। सी.एच. फुले ने वर्गविभेद को वंशानुगत मानते हुए उसे जाति की संज्ञा दी है। मनुस्मृति में मानव समाज को चार त्रेणियों में विभाजित किया गया जिनमें, ब्राहम्ण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र। प्रारंभ में वर्ण विभाजन जन्मजात नहीं था। पी.बी. काणे ने ऋग्वैदिककाल में वर्ण-व्यवस्था को अमान्य किया है। वैदिकोत्तरकाल में दण्ड़ व्यवस्था, जाति-व्यवस्था एवं वर्णव्यवस्था को माना गया है जिसमें कार्यो के आधार पर वर्ण

का विभाजन किया गया है। बौद्ध युग में धर्मानन्द साम्बी ने प्रतिपादित किया की बौद्ध श्रमण और उपनिषदों के ऋषिमुनि जाति भेद नहीं मानते थे उन्होंने मातंक जातक से गाथा उदधृत की है। समाजसुधारकों में संत रविदास, कबीरदास, गुरूनानक, राजाराममोहनराय, दयानन्द सरस्वती, डॉ. भीमराव अंबेडकर महात्मागांधी, अर्जुनदेव ने जाति प्रथा को समाप्त करने के प्रयत्न किये हैं। कबीर, नानक पलटूदास ने ठीक ही कहा ह कि जनेऊ धारण करने से ब्राहम्ण नहीं कहा जा सकता जैसा कि कबीर दास ने यहां तक कहां है कि:- घालि जनेऊ जो ब्राहम्ण होना मेहरिया कया पहिरिया। वो जो जनम की सूद्रिन परसै तुम पांडे क्यों खाया।। महाराष्ट्र में समाजसुधार आन्दोलनकर्ताओं में गोविन्द रानाडे, ज्योतिराव फुले, रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर, नारायण गणेश चंदावरकर रानाडे, धोडो केशव कर्वे ने सामाजिक जाग्रति लाकर अछूत बच्चों एवं स्त्रियों को शिक्षा के लिये और ज्योतिराव फुले ने विद्यालय खोले जिसमें जातिवाद को समाप्त करने में अहम भूमिका रहीं।

अध्ययन का उद्देश्य

शोधार्थी के द्वारा शोधपत्र के अध्ययन के उद्देश्यों का विवेचन निम्नांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया गया है:-

1. शोधपत्र का उद्देश्य भारतीय शोधार्थियों को भारत में प्राचीनकाल से वर्तमान काल तक जाति व्यवस्था एवं वर्ण व्यवस्था का उदभव एवं विकास कैसे हुआ? उसकी ऐतिहासिक जानकारी प्रदान करना।
2. शोधार्थी के द्वारा शोधपत्र का उदेश्य भारतीय नागरिकों को जातिगत एवं वर्ण व्यवस्था रूपी बुराई के दुष्परिणामों की जानकारी देना व इस बुराई को दूर करने के सुझाव देना।
3. शोधपत्र के माध्यम से विभिन्न प्रकार की अध्ययन पद्धतियों जिनमें ऐतिहासिक एवं परम्परागत पद्धति का प्रमुख रूप से छात्राओं को ज्ञान कराना।
4. नवीन तथ्यों की जानकारी प्रदान करना।
5. मानवता का कल्याण करना एवं उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करना।
6. सामाजिक घटनाओं से सम्बन्धित परिस्थितियों का पता लगाना।
7. सामाजिक एवं राजनीतिक घटनाओं का वैज्ञानिक अध्ययन करना एवं उनका समाजीकरण करना तथा वैज्ञानिक सिद्धांतों का निर्माण करना।
8. सामाजिक एवं राजनीतिक भ्रांतियों एवं बुराईयों को जड़ से मिटाना।
9. राज्यों की राजनीति में उभरती हुई नवीन प्रवृत्तियों की जानकारी शोधार्थियों को प्रदान करना।
10. वर्तमान में सामाजिक व्यवस्थाओं में सहभोज एवं अंतर्जातीय विवाह एवं सामूहिक सम्मेलनों में किये जाने वाले विवाहों के माध्यम से जातिप्रथा एवं अस्पृश्यता को दूर करने के उपाय नागरिकों व आम जनता को बतलाना।

साहित्यावलोकन

शोधार्थी द्वारा इस शोधपत्र के माध्यम से यह बतलाने का प्रयास किया गया है कि भारत में अस्पृश्यता एवं जातिगत भेदभाव की ऐतिहासिक विकास की स्थिति रही है। इसके साथ ही राज्यों के द्वारा इसे मिटाने के लिए विभिन्न युगों में किए गए प्रयत्नों और उनकी विफलताओं की समीक्षा का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। शोधार्थी द्वारा इस अध्ययन में वर्णव्यवस्था, जातिभेद तथा अस्पृश्यता के बारे में गांधी और अम्बेडकर, दयानन्द सरस्वती, गौतम बुद्ध, ज्यातिराव फुले महावीर, कौटिल्य, आदि के विचारों, मतभेदों तथा उनके अस्पृश्यता विरोधी जनअभियानों की शक्ति और सीमाओं का आंकलन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कर सकेंगे।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में शूद्रों को ही आर्य माना गया है। इससे पूर्व भी शूद्रों को आर्य माना जाता था। भक्तिधारा के अनुसार वर्ण व्यवस्था की निंदा की गई थी। वारकरी संतों कबीर एवं गुरूनानक ने वर्ण व्यवस्था का कठोर विरोध डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने भी वर्णव्यवस्था का कठोर विरोध किया है। गुरूनानक, रामदास, अर्जुनदेव, ने भी वर्ण व्यवस्था का का विरोध करते हुए कहा है कि ''ब्राहमण, क्षत्रिय, और वैश्य, ये सभी एक ही नाभि या गर्भ से उत्पन्न हुए हैं।

जातिगत जनगणना की शुरूआम लॉर्ड मेयो के अधीन 1872 में कराई गई थी। हालांकि पहली पूर्ण और व्यवस्थित जनगणना लॉर्ड रिपन द्वारा 1881 में कराई गई और 1921 कों भारतीय के विभाजक वर्ष के रूप में जाना जाता है। स्वतंत्र भारत में जाति पर आधारित जनगणना कराने वाला कर्नाटक राज्य

प्रथम एवं द्वितीय राज्य बिहार को माना जाता है। जनगणना संघसूची का विषय है जिसका अनुच्छेद-(246) में विवेचन किया गया है। 1931 तक प्रत्येक जनगणना मे जातिगत आंकड़े शामिल थे। 1941 में जातिगत आंकड़े एकत्रित किये गये परन्तु प्रकाशित नहीं हुए। भारत के गृह मंत्री अमित शाह ने घोषणा की है कि अगली जातिगत जनगणना ऑनलाइन अर्थात् ई-मोड के माध्यम से की जायेगी। भारत में प्रत्येक 10 वर्ष (दसवार्षिक) में जनगणना 2011 तक 15 बार की जा चुकी है। राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग (NCSC) के प्रथम अध्यक्ष मार्च 2004 में श्री कुंवर सिंह को बनाया गया था और वर्तमान में इसका द्वितीय अध्यक्ष विजय सांपला को बनाया गया है। राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग एक संवैधानिक निकाय है जो भारत में अनुसूचित जातियों के विकास, उत्थान एवं उनकी समस्याओं के समाधान से सम्बन्धित कार्य करता है। इस आयोग से सम्बन्धित विवेचन भारतीय संविधान के अनुच्छेद 338 में किया गया है।

राजस्थान पत्रिका के 22 नवम्बर 2022 के भरतपुर संस्करण में प्रकाशित किया गया था कि जातिवाद के शोषण से मुक्त होने के लिये धर्म परिवर्तन का प्रयास किया गया यह प्रयास राजस्थान राज्य के भरतपुर जिले के कुछ व्यक्तियों के द्वारा सितम्बर 2022 में बौद्ध धर्म ग्रहण करने की घटना सामने आयी थी।

शोधार्थी द्वारा लेखक श्री इंद्रेश कुमार द्वारा लिखित पुस्तक 'छूआछूत मुक्त समरस भारत', प्रभात प्रकाशन,संस्करण 2022, में प्रकाशित पुस्तक में से लिया गया है। हमारे भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा कि -''मुझें लगता है कि इस देश में मजबूती तभी आएगी जब आपस में समरसता का वातावरण निर्मित होगा। केवल समानता की काफी नही है।'' समरसता के बिना समता असंभव है। समरसता के इस सपने को साकार करने का संकल्प समाजसेवी एवं राष्ट्रवादी चिंतक श्री इंद्रेश कुमार ने लिया और पूरे देश के उच्च शिक्षण संस्थानों में कार्यरत शिक्षाविदों व पत्रकारों तथा युवा पीढी के भावी छात्र प्रतिनिधियों तथा ऐसे सभी नागरिकों के माध्यम से जातिवाद को समाप्त करने हेतु समरसता के अमृत को जन-जन तक पहुँचानें का प्रयास कर रहे हैं।

बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर की 125 वीं जयंती पर देशभर में उनके विचारों, कार्य, लेखन एवं संघर्षों के सम्बन्ध में नये सिरे से वैचारिक चिंतन व वर्तमान भारत में उनकी भूमिका पर विचार-विमर्श चल रहा है। इसी सन्दर्भ में इंद्रेश कुमारजी के प्रयासों से दिल्ली विश्वविद्यालय के हंसराज महाविद्यालय में वंचित, उपेक्षित, अनुसूचित जाति, अनुजनजाति, व अन्य पिछड़े वर्गों का ऐतिहासिक समरसता समागम बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर की 125 वीं जयंती मनाने हेतु 13 अप्रेल 2016 को आयोजित हुआ जिसमें फूलसिंह महिला विश्वविद्यालय, हरियाणा की कुलपति प्रोफेसर सुश्री सुषमा यादव, प्रबुद्ध दलित चिंतक महाराष्ट्र के रमेश पतंगे ने समरसता स्थापित करने हेतु अपने विचार प्रस्तुत किये। इसी क्रम में उतरप्रदेश के जोंनपुर में स्थित वीरबहादुरसिंह विश्वविद्यालय के सभागार में 10 अप्रेल 2017 को ''सामाजिक समरसता में पूर्वोचल का योगदान विषय '' पर राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इसमें विशिष्ट प्रवक्ता रमेश कुमार पांडेय 'लाल बहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली के कुलपति थे। इसी समय 'पूज्य बाबा साहेब के सपनों का भारत'' पुस्तिका का विमोचन हुआ। इस शोधपत्र में अस्पृश्यता एवं जातिवाद के विकास एवं उत्पति का अध्ययन निम्नांकित रूप में किया गया है।

मुख्य पाठ

शोधार्थी द्वारा भारत में अस्पृष्यता एवं जातिगत भेदभाव का डॉ. भीमराव अम्बेडकर एवं महात्मा गांधी के दृष्टिकोण का परम्परागत एवं ऐतिहासिक अध्ययन वर्तमान सन्दर्भ को ध्यान में रखकर निम्नांकित बिंदुओं में करने का प्रयास किया गया हैं।

समाज विज्ञानी जी. एस. घुर्ये ने इन परिवर्तनों को चार निम्नांकित कालखण्डों में विभाजित किया है। जो इस प्रकार हैं। वैदिकयुग, वैदिकोत्तरयुग, धर्मशास्त्रयुग, आधुनिक युग।

वर्णव्यवस्था का मिथक और ऐतिहासिक विकास

(क) वैदिकयुग (ख) वैदिकोत्तरयुग (ग) धर्मशास्त्रयुग (घ) आधुनिकयुग

क. वैदिकयुग, ख. वैदिकोत्तरयुग-1 बौद्धकाल:ब्राहमण श्रेष्ठता को चुनौती, ग. धर्मेशास्त्रयुग-1. धर्मशास्त्र अर्थात् निषेधशास्त्र का प्रभाव, 2. अर्थशास्त्र का समाजशास्त्रीय अध्ययन, 3. बाहरी

आक्रमण एवं आंतरिक संक्रमण का प्रभाव, 4. भक्तिधारा एवं सामाजिक विशमता का उद्भव, 5.चोखामेला एवं संतों के द्वारा अस्पृश्यता एवं जातिवाद पर कठोर प्रहार।

घ. आधुनिकयुग की जातिव्यवस्था का अध्ययन।

1. भारत में अंग्रेजी राज और समाज सुधार आन्दोलन प्रभाव।
2. ज्योतिराव फुले सास्कृतिक क्रान्ति के अग्रदूत के रूप में।
3. उत्तर भारत में धर्मसुधार आंदोलनों का प्रभाव एवं जातिवाद का उन्मूलन
4. राजनीतिक एवं सामाजिक सुधारों के प्रयत्नों का प्रभाव।
5. राष्ट्रीय जागरण और साम्प्रायिक प्रतिनिधित्व का जातिवाद के उन्मूलन में योगदान।

क. वैदिकयुग:वर्णव्यवस्था की उत्पति या विकास

प्राचीन भारतीय साहित्य में 'वर्ण' और 'जाति'' का विवेचन समान प्रसंग में हुआ है। प्रारम्भ में सिर्फ तीन ही वर्ण थे -ब्राहम्ण, क्षत्रिय, और वैश्य। कालांतर में चौथा वर्ण शूद्र भी जुड़ गया। वर्णव्यवस्था को समाज-संगठन का स्थायी आधार बनाये रखने के लिये ऋग्वेद का 'पुरूष सूक्त ' उदधृत किया जाता है जिसमें वर्णव्यवस्था का प्रथम उल्लेख मिलता है। इस सुत्र के अनुसार वर्णों की उत्पति 'विराट पुरूष' से हुई है उस पुरूष के मुख से ब्राहम्ण, भुजाओं से क्षत्रिय तथा ऊरू (जांघ) से वैश्य तथा पद (पैर) से शूद्र पैदा हुये वह विराट पुरूष अथवा सृष्टिकर्ता 'सहत्र सिर' व सहत्र आँखों और सहत्र पैरोवाला था। और भूत और भविष्य दोनों था। और सृष्टि की उत्पति हुई। वर्ण जाति व्यवस्था के उदगम के सन्दर्भ में प्राचीन साहित्य में इस ''पुरूष सूक्त'' का बार-बार उल्लेख हुआ है। प्रारम्भ में वर्ण विभाजन जन्मजात नहीं था एक प्रकार का श्रम विभाजन ही था। फ्रांसीसी संस्कृतज्ञ लूई रेनू के अनुसार ''वर्ण जातियाँ नहीं थीं वर्ण लोगों के ढीले-ढाले गुट थे। इन गुटों में आन्तरिक संगठन और किसी प्रकार की ऊंच नीच नहीं था इनमें धीरे-धीरे तथा आंशिक रूप से ये जातिव्यवस्था के परिचायक बन गये।

ख. वैदिकोत्तरयुग वर्णो का अनुवाद (अर्थ)

इस युग में वर्णव्यस्था अब आर्यो की सामाजिक व्यवस्था का आधार बन गई थी। इस युग में दण्ड़ व्यवस्था में भी वर्ण तथा जाति के आधार पर भेदभाव किया जाता था। अपनी ही जाति की स्त्री के साथ व्याभिचार करने वाले पुरूष के लिए प्रायश्चित का दण्ड़ पर्याप्त माना गया था। परन्तु अगर वही अपराधहीन जाति का पुरूष यदि उंच वर्ण की स्त्री के साथ अपराध करे तो उसे सख्त दण्ड़ देने का विधान था। पतंजलि के ग्रंथ में ब्राहम्णों का उल्लेख है कि ''कर्तव्यहीन' ब्राहम्ण कुब्राहम्ण होते थे।

पतंजलि के शूदों की सामाजिक स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है कि दो तरह के शूदों का उल्लेख किया है। एक कोटि तो उन ब्राहम्णों, क्षत्रियें और वैश्यों की थी। जो शास्त्रविहित स्वकर्तव्यों का पालन न कर शूद्रवत जीवन व्यतीत करते थे। दूसरी कोटि माता-पिता से उत्पन्न संतान की होती थी। इस प्रकार 'कर्मशूद' और 'जन्मशून्द्र'-दो प्रकार के प्रमुख शूद्र थे। कर्म शूद्रों को ब्राहाम्णोंचित अधिकार प्राप्त नहीं था। महाभाष्य में शूद्रों का निरादार स्पट नहीं किया गया। 'ऐतरेय ब्राहम्ण' के रचियता आचार्य महिदास ऐतरेय के संबंध मे कहा जाता है कि ये अनिर्ज्ञात आचार्य की पत्नी इतरा 'शूद्रा भार्या' के पुत्र थे उन्होनें अपनी मां के नाम से हिं आपना नाम ''ऐतरेत'' रखा और उनकी रचना 'ऐतरेय ब्राहम्ण के नाम से प्रसिद्ध हुई।[21]

ग. बौद्ध काल: ब्राहम्ण श्रेष्ठता को चुनौती

वैदिकोत्तरकाल में वर्णव्यवस्था का विरोध महावीर एवं गौतमबुद्ध के द्वारा किया गया ये दोनो ही क्षत्रिय थे और दोनों ने यज्ञ एवं कर्मकाण्ड़ का विरोध किया दोनो ने संस्कृत भाषा की बजाय लोकभाषा प्राकृत को अपने उपदेशों और संदेशों का माध्यम बनाया धर्मानन्द कोसंबी ने यह प्रतिपादित किया है कि बौद्ध श्रमण और उपनिषदों के ऋषिमुनी जाति भेद नहीं मानते थे इसके प्रभाव के रूप में उन्होंने 'मातंग' और 'जातक' में विवेचन किया है।

ग-i. धर्मशास्त्र अर्थात् निषेधशास्त्र का प्रभाव

धर्मशास्त्रों के युग में तीन प्रकार के सूत्रों की रचना हुई है-श्रोत्रसूत्र, गृहसूत्र, और धर्मसूत्र। जी. एस. घुर्ये के अनुसार यह युग ईसा. की तीसरी सदी से दसवीं सदी अथवा ग्यारहवीं सदी तक रहा। इसमें मनु, विष्णु, और याज्ञवलक्य स्मृतियों की रचना हुई। इसमें स्मृतियों ने अपने समय के सामाजिक आदर्शों का प्रतिपादन किया। विभिन्न वर्णों के कर्तव्य और कार्य भी स्मृतियों में ही निर्धारित किये गये हैं। वर्णव्यवस्था अब आनुवांशिक हो गयी थी। गौतमबुद्ध के अनुसार ब्राहम्ण को

किसी भी तरह का शारीरिक दण्ड़ देना वर्जित है। वह अबध्य, अबदय, अदंडप, अबहिष्कार्य, अपरिवादय और अपरिहार्य है[26],। बौद्धायन के अनुसार शूद्र की हत्या करने वाले के लिये दण्ड़ उसी दण्ड़ की व्यवस्था थी, जो कौए, उल्लू, अथवा मेंढक को मारने वाले की होती थी। शूद्र शमशान की तरह अपवित्र माना जाता था। वह अगर किसी प्रकार का धन संग्रह करता तो उस पर भी उसके स्वामी का ही अधिकार होता था।[28]

ग–ii. अर्थशास्त्र का समाजशास्त्रीय अध्ययन

कौटिल्य ने वर्णाश्रम, धर्म पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने का समर्थन किया है और अपने शासक को आदेश दिया है कि वर्णाश्रम व्यवस्था राज्य–निर्मित नहीं है और न ही राज्य के द्वारा उसमें संशोधन और परिवर्तित करना चाहिये राज्य का कार्य सिर्फ उसकी रक्षा करना है। कौटिल्य ने 'वार्ता' को शूद्रों का स्वधर्म माना है। सेनाओं में सभी वर्णों को भर्ती करने का उल्लेख है। अर्थशास्त्र में शूद्रों को आर्य ही माना गया है। वे म्लेच्छों और अनार्यों से भिन्न थे कौटिल्य ने चाण्डाल के सामाजिक जीवन का वर्णन नहीं किया है। चीनी यात्री फाहियान के यात्राकाल(410–10) के अनुसार–''जब कभी चाण्डाल बाजार में प्रवेश करता था तो वह लकडी बजाता हुआ चलता था। इससे लोग दूर हट जाते थे। हर्ष के दरबारी और कादम्बरी के रचनाकार बाणभट्ट ने इसे 'स्पर्श वर्जित' कहा कलहण ने भी राजतरंगिणी में चाण्डाल की अधम स्थिति का चित्रण किया है''[33]।

ग–iii. बाहरी आक्रमण: आंतरिक संक्रमण का उदय

बाहरी आक्रमण सभी मुस्लिम धर्म अनुयायी थे उनके आक्रमण मूल लक्ष्य लूटपाट ही था। उन्होनें भारतीय सामाजिक व्यवस्था के साथ छेड़छाड नहीं की थी।

भक्ति आन्दोलन के पूर्व सामाजिक सुरक्षा का अभाव था जिससे अनेक कुप्रथायें प्रचलित हो गई थीं। बाहरी आडम्बर को धर्म समझ लिया गया था। जीवन निरर्थक कर्मकाण्डों से ग्रस्त था।[38] शास्त्र प्रतिपादित उच्च वर्ण के प्रभाव के कारण उत्कृष्टता और निष्कृष्टता के ऐसे दो ध्रुव तैयार हो गये थे जो मिट नही पाये। जी.एस.घूर्ये के शब्दों में ''यह धार्मिक उथल–पुथल थी।''[39]

(ग– iv) भक्तिधारा और सामाजिक विषमता का उदभव

भारतीय इतिहास में पहली बार सम्पूर्ण देश में एक भक्ति धारा से आंदोलित हो उठा। भाषा विज्ञानी जॉर्ज गियर्सन ने इस आन्दोलन की तुलना अचानक हुई बिजली की चमक से की है। उसका प्रभाव बौद्ध धर्म के आन्दोलन से भी अधिक विशाल था। जिसका प्रभाव वर्तमान समय मे भी है। महाराष्ट्र के भागवत धर्म के आद्य प्रवर्तक ज्ञानेश्वर थे वे उच्च कोटि के संत एवं विद्वान होने के साथ लोक संग्रही भी थे। निवृतिनाथ, विसोबाखेचर, जगमित्रनागा भी इसी परम्परा के संत थे। दूसरी तरफ नामदेव तथा अन्य संत कवि थे उन्होनें अपनी वाणी एवं संगतों के माध्यम से सामाजिक भेदभाव को दूर करने के प्रयत्न किये।

ग–v. चोखामेला एवं संतों के द्वारा अस्पृश्यता एवं जातिवाद पर कठोर प्रहार का काल।

चोखामेला ने जातिवाद एवं अस्पृश्यता पर कठोर तर्क देते हुये कहा है कि 'उभा राहुनि महाद्वारी चोखामेला दण्ड़ करी''45, – चोखामेला के अनुसार उस समय आर्थिक बदहाली, शिक्षा का अभाव और सामाजिक गुलामगिरी से शूद्रों का जीवन ग्रस्त दुखी और कष्टमय था। इसका उन्होंने विरोध किया। महाराष्ट्र के दलित आंदोलन के अध्येता एलीनर जेलियॉट के अनुसार चोखामेला के अधिकतर अभंग अन्य भक्त कवियों के भजनों की तरह ही है। परन्तु कुछ अभंगों में छूआछूत के विरोध का स्वर है।[46] डॉ.अम्बेडकर कबीर, गौतमबुद्ध, ज्योतिरावफुले को अपना गुरू मानते थे।[49] गुरूनानक, रामदास, अर्जुनदेव, आदि संतों ने जोर देकर कहा कि''ब्राहम्ण, क्षतित्र, वैश्य, शूद्र ये सभी एक ही नाभि या गर्भ से उत्पन्न हुये है'' इस संन्दर्भ में वर्णव्यवस्था की जड़ता पर सीधा प्रहार करते हुये कहा कि–

एक बूंद एकै मल मूतर एक चाम एक गूदा।
एक जोति ते सब उत्पन्ना कौंन ब्राहम्न कौंन सूदा।।

कबीर ने प्राचीनकाल के ब्राहम्णों के पाखण्ड़ पर चोट करते हुये कहा कि–

कलि का ब्राहम्न मसकरा ताहि न दीजै दान।
स्यों कुंटऊ नरकहि चलैसाथ चल्या जजमान।।

संतों ने वर्णविभाजन को आरोपित,निर्थक, अप्राकृतिक एवं अमानवीय बतलाया है उनकी दृष्टि में उच्च वंश में जन्म लेने मात्र से कोई ऊंचा नहीं हो जाता अत: ऊंचा बनने के लिए

कथनी-करनी ऊंची होनी चाहिये। उसके बिना तो उच्च वर्ण के आदमी की स्थिति 'मदिरा से भरे स्वर्ण कलश' के समान हो जाती है। जनेऊ धारण करने से ही ब्राहम्ण नहीं बन जाने के विरोध में कबीर ने तर्क दिया है कि:-

घालि जनेऊ जो ब्राहम्न होना मेहरिया।
वो जनम की सूद्रिन परसेतुम पांडे क्यों खाया।।

प्रसिद्ध समाज विज्ञानी डॉ. धूर्जटिप्रसाद मुखर्जी के शब्दों में कहा गया है कि -'भक्ति सम्प्रदाओं का उदय मूर्तिपूजा,जाति तथा सम्प्रदायों के अत्याचारों और कर्मकाण्डों की यान्त्रिकता के विरूद्ध विद्रोह था।''[53]

भक्ति के माध्यम से संतों ने समाज सुधार का संदेश जन-जन तक पहुंचाया परंतु वे हिन्दू समाज व्यवस्था को बदल नहीं पाये।

घ. भारत में अंग्रेजीराज और समाजसुधार आन्दोलन का प्रभाव

अंग्रेजीराज की स्थापना निश्चय ही समाज सुधार आन्दोलन एक युगान्तर कारी घटना थी मैकाले ने कहा था कि ब्रिटिश भारत की सरकार का कर्तव्य है कि भारत में अग्रेजी भाषाओं और उसके माध्यम से शिक्षा को बढ़ावा दे। समाजसुधारक राजाराममोहनराय (1774-1833) ने हिन्दू समाज की दुरव्यवस्था का जिक्र करते हुये लिखा था कि ''मुझे बड़े दुख के साथ लिखना पड़ रहा है कि हिन्दूओं कि वर्तमान धार्मिक प्रणाली उनके राजनीतिक हितों के अनुकूल नहीं है। जातिगत भेदों ने उनको अनगिनत विभागों एवं उपविभागों में विभाजित किया है। इसलिए वे देश भक्ति की भावना से वंचित हो गये हैं। अनेक प्रकार के धार्मिक कर्मकाण्डों उत्सवों एवं रिति रिवाजों ने उनको अपने कठिन कार्य करने के लिए असमर्थ बना दिया है। मेरे विचार में तो उनके राजनीतिक लाभ और सामाजिक सुविधा के लिए स्वयं उनके अपने ही धर्म में किसी न किसी प्रकार का परिवर्तन आवश्यक हैं।''[58]

इसके लिए उन्होनें 'ब्रह्मसभा' और बाद में 'ब्रह्मसमाज' की स्थापना की।

घ-II. ज्योतिरावफुले और सांस्कृतिक क्रान्ति के अग्रदूत।

महामाँ गांधी और ज्योतिरावफुले (1827-1889) ने शूद्रों,दलितों और महिलाओं के साथ अमानुषिक व्यवहार से लड़खडाती हिन्दू समाज व्यवस्था में परिवर्तन लाने के अथक प्रयास किये। फुले ''आधुनिक भारत में पिछडी और उत्पीडित जातियों में उभरे प्रथम बुद्धिजीवी थे''[66],। अपने विचारों का प्रचार-प्रसार करने के के लिये 1871 में 'दीनबंधू' नामक पत्रिका प्रारम्भ की एवं समाज सुधार हेतु 'सार्वजनिक सत्यधर्म' की स्थापना की। 1879 इनके सहयोगी नारायण मेघाजी लोखण्डे (1848-1897) ने बम्बई में मिल मजदूरों को संगठित करके पहला मजदूर संगठन बनाया।

घ-III. उत्तर भारत में धर्मसुधार आन्दोलनों का प्रभाव एवं जातिवाद का उन्मूलन

इस आन्दोलन में दयानन्द सरस्वती (1824-83) की और आर्य समाज की अहम भूमिका रही ये सौराष्ट्र के टंकारा कस्बे में एक शैव ब्राहम्ण परिवार में जनमें मूल शंकर बाल्यावस्था से ही मूर्तिपूजा के विरोधी थे। उन्होनें प्राचीन विश्वासों बुराईयों को दूर करने के लिए 1874 में 'सत्यार्थ प्रकाश'की रचना की। 1870 में स्वामीदयानन्द सरस्वती ने अपने धार्मिक विचारों को सुसंगत आधार एवं स्वरूप दिया। 1875 में बम्बई में 'आर्यसमाज' की स्थापना की जिसका स्पष्ट उद्देश्य था वैदिकज्ञान का संदेश घर-घर पहुँचाना और वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन को वैदिक आदर्शों के अनुरूप पुनर्गठन करना। उन्होनें अपने समय में प्रचलित जाति व्यवस्था और उसमें अन्तर्निहित सामाजिक अन्यायों का विरोध किया। परन्तु वे वर्णव्यवस्था के समर्थक नहीं थे यद्यपि वे इसे जन्ममूलक न मानकर कर्ममूलक मानते थे। चाहे उन्होनें वेदों को सर्वोपरि माना हो फिर भीउन्होनें छूआछूत का विरोध किया है।

घ-IV. राजनीतिक या सामाजिक सुधार (प्राथमिकता का प्रश्न)

कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन के अवसर पर समाजसुधार कांग्रेस आयोजित की गई थी। परन्तु खुलेआम विचार विमर्श नहीं हुआ। दूसरा अधिवेशन कलकत्ता में हुआ इसके अध्यक्ष दादाभाई नौरोजी थे। उन्होनें प्रतिपादित किया कि ''अपने वर्ग में किस तरह के सुधार आवश्यक है इनका निर्णय उसी वर्ग के व्यक्ति कर सकते हैं।''72,

कांग्रेस के 1917 के अधिवेशन में समाजसुधार को लिये 1917 में कहा गया कि -अस्पृश्यों के साथ हो रहे अन्यायों व उन पर थोपी गई निर्योग्यताओं को अविलम्ब समाप्त करने

का प्रस्ताव इस अधिवेशन में पास हुआ। तथा 1886 में लिये गये उक्त निर्णय के बाद समाजसुधार कान्फ्रेंस होती रही न्यायमूर्ति रानाडे इसके प्रवक्ता थे। कॉन्फ्रेंस का फिर से नामकरण-'राष्ट्रीय सामाजिक परिषद' हुआ। अब यह सामाजिक सुधार परिषद अपने एजेंड़ों पर अधिक विचार-विमर्श करने व अनेक सुझाव देने लगी।

घ-V. राष्ट्रीय जागरण और साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व

बीसवीं शताब्दी का पहला दशक ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारतीय राष्ट्रवाद में निरन्तर विवाद,तनाव और संघर्ष का दशक रहा है। साम्प्रदायिक आधार पर बंगाल का विभाजन करके ब्रिटिश शासकों ने एक प्रकार से बारूद में चिनगारी लगा दी। मार्ले मिण्टों की सिफारिशों पर आधारित 'इण्डियन कौसिंल एक्ट' 1909 में पहली बार मुसलमानों का पृथक प्रतिनिधित्व दिया गया और 1911 में बंगाल का विभाजन रद्द कर दिया। और 1912 में भारत में ब्रिटिस साम्राज्य की राजधानी दिल्ली कर दी गई। कांग्रेस ने 1908 में अपने उद्देश्य की घोषणा कर दी थी। भारत में क्रमिक रूप से स्वशासन स्थापित करने की सरकार की घोषणा से एकाएक अनेक प्रश्न चर्चित हो उठे उनमें से एक-प्रश्न अछूतों के सामाजिक, राजनीतिक और नागरिक अधिकारों का भी था। अस्पृश्यों की समस्या अन्य अल्पसंख्यक समुदायों की समस्याओं से भिन्न थी दलित भी यह मांग करने लगे की अंग्रेजी सरकार भारत को स्वतंत्रतावाद देने से पहले उनके राजनीतिक अधिकारों की स्पष्ट और पक्की व्यवस्था करें इस समय दलित राजनीतिक आन्दोलन कुछ क्षेत्रों को छोड़कर पूरी तरह शुरू नहीं हुआ था। बंबई प्रेसीडेंसी में दलितों में अस्पृश्यता विरोधी मोर्चे पर उन दिनों सक्रिय लोगों में अंग्रणी थे। विट्ठल रामजी शिंदे तथा सर नारायण गणेश चंदावरकर। इन्होनें दलितों के सम्मेलन करके उनको अलग प्रतिनिधित्व देने की भी मांग की।''

सामग्री और क्रियाविधि

शोधार्थी द्वारा इस शोधपत्र के अध्ययन में आँकड़ों के संकलन करने एवं सारगर्भित एवं सरल स्पष्ट बनाने हेतु निम्नांकित शोध में प्रमुख उपरकणों का प्रयोग में लिया गया है।

1. ऑनलाइन एवं ऑफ़लाइन कक्षाऐं, वेबीनार, सेमीनार, कॉन्फ्रेंस संगोष्ठी लाइव यूट्यूब, ऑनलाइन इन्टरनेट के माध्यम से खोज, वेबसाइट आदि।
2. शोधपत्र के शीर्षक एवं विषय का चयन विद्वानों एवं शोध छात्रों से विचार-विमर्श एवं राजकीय कन्या महाविद्यालय शिवगंज सिरोही राजस्थान के संकाय सदस्यों से परिचर्चा के माध्यम से किया गया।
3. राजकीय कन्या महाविद्यालय शिवगंज सिरोही राजस्थान के पुस्तकालय एवं पंचायत समिति शिवगंज सिरोही राजस्थान के सार्वजनिक पुस्तकालय की पुस्तकों का सहयोग लिया गया।
4. प्रमुख समाचार पत्रों का सहयोग लिया गया जिनमें प्रमुख रूप से-राजस्थान पत्रिका ,दैनिक भास्कर, नवभारत टाइम्स, दैनिक नवज्योति व अन्य मासिक, वार्षिक ,एवं समसामयिक पत्र-पत्रिकायें।
5. पेंन, कम्प्यूटर, ऐतिहासिक, परम्परागत, वैज्ञानिक आदि अध्ययन पद्धतियों के मूल्यांकन, सुझाव, निष्कर्ष, विश्वकोष, आलेख राजनीतिक, सामाजिक, विकास विधियों से सामाजिक जातिवाद की जानकारी प्राप्त करना व इसके कारण, निदान, एवं सुझावों के माध्यम से शोधपत्र को लिखनें में उपरोक्त सभी का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से उपकरणों को आवश्यकतानुसार उपयोग में लिया गया।

विश्लेषण

1. अयोग्य उम्मीदवारों के चयन को रोका जाये।
2. निर्वाचन के समय भृष्टाचार को रोका जाये, जिससे जातिवाद पर लगाम लग सके।
3. जातिवाद से सामाजिक संगानों को होने वाले नुकसान को रोका जाये।
4. जातिवाद राष्ट्र एवं राज्य की गतीशीलता एवं विकास मे बाधक।
5. जातिवाद देश की एकता एवं अखण्डता को खतरा पहुँचता है।
6. बेरोजगारी को बढावा अथवा जातिवाद के कारण अयोग्य व्यक्ति का चुनाव हो जाता।

जाँच - परिणाम भारतीय समाज में जातिवाद के दुष्परिणाम अधिक विशाल,एवं संकटकालीन एवं दयनीय है,एक ऐसा जहर है जिसने भारतीय समाज को कमजोर एवं

खोखला कर दिया है। अत: जाविवाद के दुष्परिणामों का विवेचन निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया गया है।

1. अयोग्य उम्मीदवारों के चयन को रोका जाये।
2. निर्वाचन के समय भृष्टाचार को रोका जाये, जिससे जातिवाद पर लगाम लग सके।
3. जातिवाद से सामाजिक संगानों को होने वाले नुकसान को रोका जाये।
4. जातिवाद राष्ट्र एवं राज्य की गतीशीलता एवं विकास मे बाधक।
5. जातिवाद देश की एकता एवं अखण्डता को खतरा पहुँचता है।
6. बेरोजगारी को बढावा अथवा जातिवाद के कारण अयोग्य व्यक्ति काचुनाव हो जाता है। व्यक्तियों का नैतिक पतन -जातिवाद के कारण एक व्यक्ति अपनी जाति के सदस्यों को आगे बढानें के लिये अनेक अनुचित साधनों प्रचार करना।
7. राष्ट्रीय विकास में बांधा उत्पन्न होती हैं।
8. जन धन की हानि एवं पारस्परिक जातीय हिंसा एवं संघर्ष की उत्पति की संभावना हमेशा बनी रहती है।
9. देश की अखण्डता एवं एकता को खतरा उत्पन्न होता है।
10. औद्योगिक कुशलता में बाधा उद्योगों में जातिगत आधार पर नियुक्तियों की जानें के कारण अकुशल चयनित हो जाते हैं और कुशल व्यक्ति चयन से रह जाते है।
11. जातिगत संस्थाओं की उत्पति के आधार पर अनेक संस्थाये चिकित्सालय ,महाविद्यालय आदि जाति के चलाये जा रहे हैं जिससे अन्य वर्गों के मध्य कटुता, वैमनस्यता की भावना बढती जा रही है। जो देशहित में नहीं है।
12. जातिवाद के कारण भारत की एकता एवं अखण्डता को खतरा व विघटन की समस्या बनी रहती है।
13. जातिवाद के कारण तनाव व संघर्ष कटुता उत्पन्न हो जाती है।
14. जातिवाद से यक्तिगत एवं सामाजिक राष्ट्रीय प्रगति में जातिवाद में बाधा उत्पन्न होती है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रत्येक समय में भेद-भाव पर आधारित जातिमूलक व्यवस्था का विरोध हुआ है। गौतमबुद्ध, संत कबीरदास, गुरूनानकदेव ज्योतिराव फुले, महात्मा गांधी, डॉ भीमराव अंबेडकर, आचार्य, चार्वाक, नेहरू, राममनोहरलोहिया, दयानन्दसरस्वती, विवेकानन्द, कौटिल्य, रामदास, रविदास, रैदास, अर्जूनदेव, गोविन्द रानाडे, आदि महापुरूषों ने एवं राजनेताओं एवं संतों के द्वारा समाचार पत्रों पत्रिकाओं एवं उनके द्वारा रचित पुस्तकों में राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत हुई हैं।

1. संवैधानिक कानून निर्मित करके व वयस्क मताधिकार पद्धति अपनाकर भारत में जातिवाद एवं अस्पृश्यता को समाप्त करने में उपरोक्त सभी ने अपनी अहम भूमिका प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से निभायी है।
2. ग्रामीण एवं शहरी नागरिकों ने सामाजिक शिक्षा के माध्यम से जातिवाद को कम करने में काफी योगदान किया हैं।
3. उच्च एवं निम्न जाति में परस्पर प्रेम, सोहाद्र, सामंजस्य एवं समानता स्थापित करने का कार्य महापुरूषों एवं संतों के द्वारा किया गया हैं।
4. भारत सरकार ने समय-समय सभी नागरिकों को संवैधानिक कानून बनाकर अनिवार्य शिक्षा एवं मौलिक अधिकारों तथा विशेष रूप से समानता का अधिकार प्रदान करके तथा अर्न्तजातीय विवाहों एवं सामूहिक सहभोज को प्रोत्साहन देकर वर्तमान में जातिवाद एवं भारतीय संविधान के अनुच्छेद 17 के द्वारा 1976 में अस्पृश्यता निषेध कानून बनाकर छूआछूत एवं जातिवाद को बहुत अधिक सीमा तक समाप्त करने का प्रयास किया गया है।

भविष्य के अध्ययन के लिए सुझाव शोधार्थी द्वारा इस शोधपत्र के माध्यम से शोधार्थियों के अध्ययन के भविष्य हेतु प्रमुख सुझाव दिये गये हैं। जिनके माध्यम से जाति व्यवस्था में निम्नलिखित रूप से परिवर्तन लाया जा सकता है या इसे समाप्त किया जा सकता है।

1. उपरोक्त वर्णित जातिव्यवस्था के परम्परागत स्वरूप को परिवर्तित किया जा सकता है। भारत में नगरीकरण एवं औद्योगीकरण को बढावा दिया जाये, क्योंकि भारत में

कारखानों के निर्माण होने से सभी

2. निम्न जातियां अपने पूर्व में स्थापित जाति प्रथा पर आधारित व्यवसाय को छोड़कर उद्योगों में अपना कार्य करना प्रारम्भ करेंगे। उच्च जातियों के नागरिकों के साथ कार्य करने से पारस्परिक सोहार्द , भाईचारा , एवं समानता स्थापित होगी।
3. स्वतंत्रता एवं धार्मिक आन्दोलन –भारत की स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय समाज सुधारकों के द्वारा सामाजिक एवं धार्मिक आन्दोलन के माध्यम से जातिवाद के विरूद्ध आवाज उठाई गई उनके परिणाम स्वरूप ही अब सामूहिक भोजों ,सामूहिक अन्तर्रजातीय विवाहों की स्वतंत्रता को बढावा दिया जाये जिससे रक्त सम्बन्धों को बढावा मिलेगा एवं जातिवाद समाप्त होगा।
4. प्रजातंत्र की स्थापना स्वतंत्रता के पश्त भारतीय संविधान 1950 में अस्तित्व में आया उसके कानूनों को कठोरता से लागू किया जाये जिससे किसी के साथ रंग, लिंग, जाति किसी प्रकार से भेदभाव नहीं किया जायेगा।
5. महिला शिक्षा को प्रोत्साहन –महिलाओं को पुरूषों के समान शिक्षा तथा समान शिक्षा की व्यवस्था की जाये जिससे की उनका सामाजिक आर्थिक राजनीतिक विकास हो सके और वे किसी के शोषण का शिकार न बन सकें। तथा सामाजिक कुप्रथाओं को दूर करने में सक्षम हो सके।
6. संयुक्त परिवार के विघटना को रोका जाये एवं आर्थिक समानता विकसित की जाये जिससे गुण एवं कौशल को बढावा दिया जा सकें।
7. संचार एवं यातायात के साधनों का विकास किया जाये जब सभी जातियों के लोग अनेक प्रान्तों,धर्मो,जातियों के लोग एक साथ बस एवं ट्रेन,हवाई जहाज में यात्रा करेंगे तो आपसी सहयोग ,सम्पर्क एवं समानता की भावना स्थापित हो सकेगी।
8. दण्ड़ की व्यवस्था का प्रावधान भारत में संवैधानिक कानूनों ने जिनमें हिन्दू विवाह वैधकरण अधिनियम 1954, विशेष अधिनियम 1976, हिन्दू विवाह अधिनियम 1995, अस्पृश्यता अधिनियम 1955, एवं अनुच्छेद 15 तथा 1954 के अधिनियम द्वारा जमीदारी प्रथा को समाप्त किया गया। एवं जातिगत व्यवस्था के अलावा औद्योगीकरण व्यवसायों पर बल दिया गया। इसी प्रकार का कठोर कानून भारतीय संसद द्वारा एक और बनाया जाना चाहिए।
9. आर्थिक समानता के लिए सभी वर्ग के नागरिकों को रोजगार के समान अवसर प्रदान किये जायें ,जिससे कि निम्न जातियों लोग व्यवसायों में उच्च जाति के लोगों के आर्थिक शोषण का शिकार नहीं हो सकें।
10. विद्यालयों एवं महाविद्यालयों की स्थापना की जाये जिससे इनमें उच्च एवं निम्न जाति के छात्र-छात्रा शिक्षा ग्रहण कर सकें एवं निम्न जाति के व्यक्ति उच्च पदों को प्राप्त करेंगे तो नवयुवकों के मस्तिक में से प्रारम्भ से ही जातिवाद की भावना समाप्त हो जायेगी। एवं उनमें राष्ट्रीय भावना का विकास होगा।

आभार शोधार्थी राजकीय कन्या महाविद्यालय शिवगंज सिरोही राजस्थान के प्राचार्य ड़ॉ रवि शर्मा एवं नोडल प्रभारी डॉ. नरपत सिंह देवड़ा एवं जिनमें संकाय सदस्य ड़ॉ संगीता रौतेला, ड़ॉ पंकज नागर, ड़ॉ राजेन्द्र कुडी, अनामिका इन्दा, ड़ॉ किशोर लाल मीणा एवं राजकीय पंचायत समिति शिवगंज के पुस्तकालय के अध्यक्ष श्री सोम प्रसाद एवं ड़ॉ पुरणमल बैरवा तथा श्रीमति गीता देवी, जयवीर सिंह दौलिया,ड़ॉ सत्येन्द्र दौलिया,कोमल दौलिया, अनिता दौलिया तथा कम्प्यूटर ऑपरेटर तेजाराम उपरोक्त सभी का हृदय से आभार प्रकट किया गया है। जिन्होनें प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से शोधार्थी के शोधपत्र को पूर्ण कराने में उन्होनें योगदान दिया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. इरफान हबीब –कास्ट एंड मनी इन इण्डियन हिस्ट्री, पृष्ठ संख्या (6,13,)
2. घुर्ये ,जी,एस ,कास्ट एंड रेस इन इण्डियां ,पृष्ठ संख्या,43,46,42,77,69,99
3. ब्राहमणोंअस्य मुखमासीद बाहू राजन्य:कृत:! ऊरूतदस्ययदवैश्य:पदभ्यां शूदों अजामत्।। (ऋग्वेद, 10,90,1-2)
4. रेनू लुई-दि सिविलाइजेशन ऑफ एंशंट इण्डियां;अनु स्प्राट,सुशील गुप्ता पृ 42,
5. काणे; पी, वी, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र पृ, 27

6. काणे, पी, वी, धर्मशास्त्राचाइतिहास:सारांश रूप ग्रथ पूर्वार्द्ध पृ,120
7. बाशम,ए,एल-दा वंडर दैट वाज इंडियां, पृष्ठ 131, 113,
8. मिश्र, जयशंकर-प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृष्ठ 15, 137, 38, 46, 48, 138, 139,
9. शर्मा, रामशरण -शूद्राज इन एंशंट इंडिया पृ, 64
10. नैसफील्ड, ब्रीफव्यू ऑफ दा कास्ट सिस्टम पृ, 7
11. अग्निहोत्री, प्रभूदयाल, पृष्ठ-147, 150, 153, 154, 155,
12. शतपथ ब्राहम्ण-53, 4, 20,
13. कोसंबी धर्मानन्द भगवान बुद्ध पृष्ठ-66
14. मिश्र, रमेशचंद्र -संत साहित्य समाज पृष्ठ, 296, 97, 300, 301
15. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, पृष्ठ-573
16. सरदार,गंगाधर बालकृष्ण (गं.बा.) संत वाड्मयाची सामाजिक फलश्रुति, पृष्ठ-11, 47
17. सरदार, गं.बा. -उपर्युक्त पृष्ठ-70-71, 76, 77, 80
18. फडके, भालचन्द्र-अम्बेडकरांचे समाज चिंतन, पृष्ठ-1-2
19. निर्गुणत्व-चिन्तन की गांधीकृत व्याख्या के सन्दर्भ में कबीरजी की चर्चा के लिये देखिये, 'महादेव की डायरी' खण्ड-7 (सर्वसेवा संघ), पृष्ठ-59, 60
20. हिन्दू मुस्लिम एकता के सन्दर्भ में कबीर का उल्लेख, 'सम्पूर्ण गांधीवाड्मय' खण्ड-19, पृष्ठ-310
21. मुखर्जी, धुर्जटि प्रसाद-मोडर्न इण्डियन कल्चर, पृष्ठ 16, 23-25
22. हीमसैठ, चार्ल्स एच,-इण्डियन नेशनलिज्म एण्ड़ हिन्दू सोशलरिफॉर्म, पृष्ठ-13, 17, 88, 189
23. रानाड़े-मिसलेनियस राइटिंग्स, पृष्ठ-124-125
24. फडके, प.दि.- सोशलरिफॉमर्स ऑफ महाराष्ट्र, पृष्ठ-8, 9
25. राय, एस-फ्रॉम फुलेट अम्बेडकर, अनएकंप्लिश्ड रिवॉल्यूशन, पृष्ठ-380
26. जगताप,मुरलीधर -युगपुरूष महात्मा फुले, पृष्ठ-71, 83
27. सारदा हरबिलास-दयानन्द कमेमोरेशन वाल्यूम, पृष्ठ-71-72
28. सत्यार्थप्रकाश- पृष्ठ -3, 7
29. भटटाचार्य सच्चिदानन्द भारतीय इतिहास कोश, पृष्ठ-323, 331
30. बां. डॉ. आं. रा. एण्ड़, स्पी, वॉ 9, पृष्ठ-1 उपर्युक्त पृष्ठ-14-15
31. गणेशमंत्री द्वारा लिखित पुस्तक, गांधी और अम्बेडकर-प्रभात प्रकाशन दिल्ली अध्याय -2 पृष्ठ- सं. 49-90
32. राजस्थानी ग्रंथाकार जोधपुर राज. से प्रकाशित कर्नल टॉड कृत लेखक डॉ देवीलाल पालीवाल द्वितीय संस्करण -2010 अध्याय '-4 पृष्ठ-72, 73, 84, 185
33. विकास खत्री द्वारा रचित, पुस्तक विश्व के महान व्यक्तित्व -दिया प्रकाशन भवन जयपुर संस्करण-2019 पृष्ठ-सं.-33, 161, 171, 173
34. इन्द्रेश कुमार- छूआछूत मुक्त समरस भारत, प्रभात प्रकाशन संस्करण-2022 पत्र-पत्रिकायें 1, इण्डियां टूडे (साप्ताहिक पत्रिका),कनाट पैलेस नईदिल्ली। 2, चेतना (वार्षिक पत्रिका),चेतना प्रकाशन पुरानी मण्डी अजमेर। 3, कुरूक्षेत्र (मासिक पत्रिका), मंत्रालय कृषि भवन ,नईदिल्ली। 4, योजना (मासिक पत्रिका), ए योजना भवन ,संसद मार्ग नई दिल्ली। 5, बढाना (राष्ट्रीय मासिक पत्रिका), बढाना पब्लिकेशन वर्ल्ड ,गांधी नगर चौरसिया बास रोड़ अजमेर। 6, उत्कृर्ष संस्थान जयपुर से प्रकाशित मासिक पत्रिका -समसामयिक जूलाई -2022 अंक -2 पृष्ठ 11 एवं जून 2022 -अंक-2 व 3 पृष्ठ -55 7 राजस्थान पत्रिका -22 नवम्बर 2022। 8 दैनिक भास्कर -21 नवम्बर 2022। 9 नव भारत टाइम्स- 22 नवम्बर 2022।

स्वाधीनता आंदोलन और खड़ी बोली हिंदी का साहित्य

- देवचंद्र भारती 'प्रखर'

"हिंदी कहानीकारों में प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, मोहन राकेश, अमरकांत आदि तथा उपन्यासकारों में प्रेमचंद के अतिरिक्त यशपाल, धर्मवीर भारती आदि के साहित्य में राष्ट्रीय चेतना सन्निहित है। खड़ी बोली हिंदी साहित्य के श्रवण और पाठन से पराधीन भारत की जनता स्वाधीनता के प्रति जागरूक हुई, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को सफलता मिली।"

शोध सारांश

पराधीन भारत में ब्रिटिश शासन से मुक्ति पाने के लिए भारतीय साहित्यकारों ने स्वाधीनता आंदोलन में अपना साहित्यिक योगदान दिया। साहित्यकारों ने खड़ी बोली हिंदी में साहित्य-सृजन करके भारतीय जनता में जागृति और स्वदेश प्रेम का भाव उत्पन्न किया। कविता, कहानी, नाटक तथा उपन्यास आदि विधाओं के माध्यम से हिंदी साहित्यकारों ने स्वाधीनता आंदोलन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। अनेक साहित्यकारों ने साहित्य सृजन के अतिरिक्त स्वयं स्वाधीनता आंदोलन में प्रतिभाग भी किया तथा वे अंग्रेजी प्रशासन द्वारा बंदी भी बनाये गये, किंतु उन्होंने अपनी क्रांति की राह नहीं छोड़ी। हिंदी साहित्यकारों द्वारा निरंतर साहित्यिक प्रयास के कारण भारत के जवानों ने अंग्रेजी शासन का कड़ा विरोध किया तथा अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए विवश कर दिया।

बीज शब्द

स्वाधीनता, खड़ी बोली, हिंदी साहित्य, राष्ट्रीय चेतना, स्वतंत्रता संघर्ष, सांस्कृतिक जागरण, अंग्रेजी शासन, देशप्रेम।

मूल आलेख

स्वाधीनता, आधुनिक काल का एक प्रमुख राजनैतिक दर्शन है। स्वाधीनता, वह स्थिति है, जिसमें किसी राष्ट्र, देश या राज्य द्वारा अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने पर किसी दूसरे राष्ट्र, देश या राज्य का किसी भी प्रकार का कोई प्रतिबंध नहीं होता। अर्थात् स्वाधीन राष्ट्र अथवा देश के नागरिक स्वशासन से शासित होते हैं। स्वाधीनता ही आत्मनिर्भरता को जन्म देती है। तथागत गौतम बुद्ध की वाणी श्अत्त दीपो भवश मनुष्य स्वाधीनता का बोध कराती है। स्वाधीनता का विलोम शब्द श्पराधीनताश है। पराधीनता के बारे में महान संतकवि रविदास ने कहा है – 'पराधीनता पाप है/जान लेहु रे मीत/रविदास दास पराधीन सो/कौन करे है प्रीत।' इसी प्रकार भक्तकवि तुलसीदास ने श्पराधीन सपनेहु सुख नाहींश कहकर पराधीनता में मिलने वाले दुखों का संकेत किया है। आधुनिक भारत के महान विचारक डॉ. भीमराव आंबेडकर के शब्दों में, ''स्वाधीनता पर आपत्ति करने का अर्थ है, दासता को शाश्वत बनाना, क्योंकि दासता का अर्थ केवल कानूनी अधीनीकरण या परतंत्रता नहीं है। इसका अर्थ है, समाज में व्याप्त वह स्थिति, जिसमें कुछ लोगों को विवश होकर अन्य लोगों से उन प्रयोजनों को भी स्वीकार करना होता है, जिनके अनुसार उन्हें आचरण करना है। यह स्थिति तब भी रह सकती है, जब कानूनी अर्थ में दासता का अस्तित्व न हो।[1], पराधीनता ही मनुष्य को दासता के बंधन में बनने के लिए विवश करती है।

भारतवर्ष की पराधीनता का इतिहास प्राचीन काल से आरंभ होकर आधुनिक काल तक समाप्त होता है। प्राचीन काल में, थोड़े समय के लिए ही सही, किंतु सिकंदर ने अपने आक्रमण के द्वारा भारतवासियों को पराधीनता का अनुभव करा दिया था। मध्यकाल में, मुसलमान शासकों ने कई सौ वर्षों तक भारत पर शासन किया और भारतवासियों को पराधीन बनाये रखा। सन् 1757 ई. से लेकर सन् 1758 ई. तक भारत ईस्ट इंडिया कंपनी के अधीन रहा। सन् 1857 ई. की क्रांति के बाद सन् 1858 ई. से भारत में ब्रिटिश शासन लागू हो गया। ब्रिटिश शासन के दौरान भारत के अनेक साहित्यकार, समाजसेवी और राजनेता जागरूक होकर अपनी स्वाधीनता के लिए आंदोलन शुरू किये। भारत के स्वाधीनता आंदोलन में राजनेताओं, देशभक्तों, समाजसेवियों आदि के अतिरिक्त साहित्यकारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। विशेष रूप से, हिंदी भाषा के साहित्यकारों ने अपने प्रेरक साहित्य के माध्यम से भारत के युवाओं में देशभक्ति की भावना का संचार किया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (9 सितंबर 1850 – 6 जनवरी 1885) ने अपनी कविताओं, नाटकों एवं निबन्धों के द्वारा अंग्रेजी शासन के कारण होने वाली भारत की दुर्दशा का यथार्थ चित्रण किया तथा भारतवासियों को अपनी भाषा की उन्नति और स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करने की शिक्षा दी। अपने नाटक श्अंधेर नगरीश में उन्होंने 'अंधेर नगरी चौपट राजा' का संवाद प्रस्तुत करके तत्कालीन अंग्रेजी शासकों पर तीखा व्यंग्य किया। इसी प्रकार भारतेंदु जी ने अपने निबंध 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है?' में भारतवर्ष की उन्नति के लिए अनेक उपाय सुझाये, जो तार्किक और वैज्ञानिक हैं। भारत की दुर्दशा भारतेंदु हरिश्चंद्र से देखी नहीं जाती थी। उन्होंने अपने नाटक 'भारत-दुर्दशा' में लिखा है –

रोअहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई!
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।[2]

द्विवेदीयुगीन कवि नाथूराम शर्मा श्शंकरश (1859-1932) का नाम राष्ट्रीय चेतना के कवियों में अग्रगण्य है। उनके विपुल रचनासंसार में पराधीन राष्ट्र की वेदना, समाज में व्याप्त पाखंड, अंधविश्वास, कदाचार और विधवाओं की दीन-हीन दशा आदि की उपस्थिति मार्मिक चित्रण है। श्शंकरश जी की कविताओं में तत्कालीन ब्रिटिश शासन से छुटकारा पाने की टीस, उपदेश तथा संदेश सभी पाये जाते हैं। साथ ही, वे बच्चों, बड़ों, बूढ़ों और महिलाओं को प्रेरणा देते हुये भी दिखाई देते हैं। उनकी कविताओं में वह विविधता, लालित्य, छन्द, अंलकार और बिम्बों का अनुपम प्रयोग मिलता है, जिसे पढ़कर पाठक उसी में खो जाता है। स्वाधीनता के लिए अपने प्राणों का बलिदान करने की प्रेरणा देते हुए नाथूराम शर्मा 'शंकर' ने लिखा है –

देशभक्त वीरों! मरने से नेक नहीं डरना होगा।
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।।[3]

स्वामी अछूतानन्द 'हरिहर' (6 मई 1879 – 20 जुलाई 1933) क्रांतिकारी चेतना का प्रसार करने वाले साहित्यकार तथा समाज सुधारक थे। उनकी रचनाओं में वंचित-वर्ग की पीड़ा राष्ट्रीयता की भावना को समेटे हुए दिखाई देती है। यदि 'वंचित' शब्द का व्यापक अर्थ ग्रहण किया जाए, तो अंग्रेजी शासन में सभी भारतवासी श्वंचितश थे। अंग्रेजों द्वारा उन्हें स्वाधीनता से वंचित रखा गया था, समानता से वंचित रखा गया था, न्याय से वंचित रखा गया था। भारतवासियों को गुलामी की जंजीरे तोड़ने के लिए आह्वान करते हुए स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' ने लिखा है-

अब तो नहीं है वह जमाना, जुल्म 'हरिहर' मत सहो।
अब तो तोड़ दो जंजीर, जकड़े क्यों गुलामी में रहो।।[4]

द्विवेदी युगीन साहित्यकार गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' (21 अगस्त 1883 – 20 मई 1972) ने 'सनेही' उपनाम से कोमल भावनाओं की कविताएँ, 'त्रिशूल' उपनाम से राष्ट्रीय कविताएँ तथा श्तरंगीश एवं 'अलमस्त' उपनाम से हास्य-व्यंग्य की कविताएँ लिखीं। राष्ट्रीय अस्मिता के प्रखर समर्थक 'सनेही' जी की सुदीर्घ और एकनिष्ठ काव्य-साधना राष्ट्र को समर्पित रही है। उनकी छन्द-बन्ध से युक्त कविता 'स्वदेश' जन-जन की जिह्वा पर आद्यन्त विराजमान रही है।

जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं।
वह हृदय नहीं है, पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।।[5]

मैथिलीशरण गुप्त (3 अगस्त 1886 – 12 दिसंबर 1964) द्विवेदी युग के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि हैं । उन्हें 'राष्ट्रकवि' कहा जाता है। गुप्त जी राष्ट्रकवि केवल इसलिए नहीं हैं कि देश की स्वाधीनता के पहले राष्ट्रीयता की भावना से लिखते रहे। बल्कि वे राष्ट्रकवि इसलिए हैं, क्योंकि वे भारतवासियों की चेतना, उनकी बातचीत, उनके आंदोलनों की भाषा बन गये। व्यक्तिगत सत्याग्रह के कारण उन्हें सन् 1941 ई. में जेल जाना पड़ा, तब तक वे हिंदी के सबसे प्रतिष्ठित कवि बन चुके थे। गुप्त जी ने अपनी काव्य-पुस्तक 'भारत भारती' में भारत के युवाओं को देशहित हेतु प्रेरित करते हुए लिखा है –

हे नवयुवाओं! देश भर की दृष्टि तुम पर है लगी,
है मनुज जीवन की तुम्हीं में ज्योति सबसे जगमगी।
दोगे न तुम तो कौन देगा योग देशोद्धार में?
देखो कहाँ क्या हो रहा है आजकल संसार में।।[6]

छायावाद के स्तंभ कवि जयशंकर प्रसाद (30 जनवरी 1889 – 15 नवंबर 1937) उस अर्थ में राष्ट्रीय चेतना के कवि नहीं हैं, जिस अर्थ में 'माखनलाल चतुर्वेदी', 'बालकृष्ण शर्मा नवीन' और 'सुभद्रा कुमारी चौहान' हैं। छायावादी काव्य में राष्ट्रीय जागरण 'सांस्कृतिक जागरण' के रूप में दिखाई देता है। इस सांस्कृतिक जागरण की अभिव्यक्ति 'प्रसाद' जी की 'अब जागो जीवन के प्रभात', 'बीती विभावरी जाग री'आदि कविताओं में है। जयशंकर प्रसाद की राष्ट्रीय चेतना अधिक

स्पष्ट रूप में उनके नाटकों में व्यक्त हुई है। जब-जब विदेशी शक्ति का आक्रमण हुआ, तब-तब कवि 'प्रसाद' जी की लेखनी दृढ़ होकर लोगों को संग्राम में रणवीर बनकर शामिल होने के लिए पुकारती रही। ऐसी ही पुकार उनके नाटक 'चंद्रगुप्त' में सिकंदर के आक्रमण के उपरांत प्रणय-गीत में देखने को मिलती है। यथा -

हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती।
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती।।[7]

छायावादी कवि रामनरेश त्रिपाठी (4 मार्च 1889 - 16 जनवरी 1962) राष्ट्रीय काव्यधारा के मुख्य कवि हैं। बहुमुखी प्रतिभा के धनी त्रिपाठी जी गांधीवादी दर्शन के अग्रदूत तथा भारतीय परम्पराओं के पोषक कवि हैं। त्रिपाठी जी ने असहयोग आन्दोलन में भाग लिया तथा दो वर्ष तक जेल में रहे, किन्तु देशप्रेम का भाव नही छोड़ा। बल्कि अंग्रेजो के इस कृत्य के बाद उनमें राष्ट्रीय चेतना का और अधिक संचार हुआ। उनकी प्रमुख काव्य-रचनाओं में 'पथिक' श्रेष्ठ रचना है। पथिक के सामने उत्पन्न होने वाली समस्याएँ उनकी स्वयं की है। उन्होनें पथिक के माध्यम से स्वयं की पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। पथिक सभी से सहयोग प्राप्त कर अपना मार्ग प्रशस्त करता है। वह गरीबों, मजदूरों, किसानों, क्रान्तिकारियों और देशभक्तों का मित्र है। पथिक के रूप में रामनरेश त्रिपाठी ने दूसरे के अधीन होने को पराधीनता स्वीकार किया है तथा पराधीनता को मनुष्य के लिए असह्य कहा है। उन्होंने लिखा है -

पराधीन रहकर अपना सुख शोक न कह सकता है।
यह अपमान जगत में केवल पशु ही सह सकता है।।[8]

माखनलाल चतुर्वेदी (4 अप्रैल 1889-30 जनवरी 1968) कवि, लेखक और पत्रकार थे। उनकी भाषा सरल और ओजपूर्ण है। 'प्रभा' और 'कर्मवीर' पत्रों के संपादक के रूप में उन्होंने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध प्रबल प्रचार किया। चतुर्वेदी जी की कविताओं में देशप्रेम के साथ-साथ प्रकृति और प्रेम का भी चित्रण हुआ है। सन् 1921-22 ई. के असहयोग आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लेते हुए वे जेल भी गये। छत्तीसगढ़ में बिलासपुर की केंद्रीय जेल के बैरक नंबर नौ में रहकर स्वाधीनता के प्रेमियों में जोश भरने के लिए राष्ट्रकवि माखन लाल चतुर्वेदी ने 5 जुलाई सन् 1921 ई. 'को पुष्प की अभिलाषा' कविता लिखी थी।

चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊँ,
चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ,
मुझे तोड़ लेना बनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक!
मातृ-भूमि पर शीश-चढ़ाने, जिस पथ पर जावें वीर अनेक![9]

श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' (9 सितम्बर 1896 - 10 अगस्त 1977) स्वतन्त्रता संघर्ष में सक्रिय होने के साथ ही काव्य-रचना का कार्य भी करते रहे। वे एक दृढ़ संकल्प वाले व्यक्ति थे। सन् 1921 ई. में उन्होंने 'स्वराज्य प्राप्ति तक नंगे पाँव रहने का' व्रत लिया और उसे निभाया। गणेश शंकर विद्यार्थी की प्रेरणा से 'पार्षद' जी ने 3-4 मार्च सन् 1924 ई. को भारत प्रसिद्ध 'झण्डा गीत' की रचना की। पण्डित जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में 13 अप्रैल सन् 1924 ई. को 'जालियाँवाला बाग दिवस' पर फूलबाग, कानपुर में सार्वजनिक रूप से झण्डागीत का सर्वप्रथम सामूहिक गान हुआ। 'पार्षद' जी के बारे में अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुये नेहरू जी ने कहा था, ''भले ही लोग पार्षद जी को नहीं जानते होंगे, परन्तु समूचा देश राष्ट्रीय ध्वज पर लिखे उनके गीत से परिचित है।'' श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' जी के द्वारा रचित 'झंडागीत' की कुछ पंक्तियाँ अवलोकनार्थ प्रस्तुत हैं -

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा।
सदा शक्ति सरसाने वाला, प्रेम सुधा बरसाने वाला,
वीरों को हरषाने वाला, मातृभूमि का तन-मन सारा।।
झंडा...।[10]

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' (8 दिसंबर 1897 - 29 अप्रैल 1960) कवि, गद्यकार और अद्वितीय वक्ता थे। उन्हें राष्ट्रीय जागरण व प्रेम-विरह का कवि माना जाता है। हिंदी साहित्य में उनका आगमन उस समय हुआ, जब भारत में अंग्रेजी राज के कारण स्वाधीनता आंदोलन चल रहा था। उस तत्कालीन स्थिति का उन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। उनकी मूल चेतना और व्यक्तित्व छायावादी आत्मनिष्ठता के अनुकूल नहीं था। इसलिए उनकी वाणी में राष्ट्रप्रेम का स्वर मुखरित हुआ, जो कि मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी आदि की परम्परा में प्रकट होता है। श्नवीनश जी सहज रूप से राष्ट्रीय जागरण के प्रति प्रवृत्त हुए थे तथा स्वाधीनता आंदोलन को उन्होंने अभिप्रेरक स्वर दिया था। उन्होंने श्विप्लव गानश शीर्षक कविता में लिखा है -

कवि! कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए।
एक हिलोर इधर से आए, एक हिलोर उधर से आए,
प्राणों के लाले पड़ जाएँ, त्राहि-त्राहि स्वर नभ में छाए;
नाश और सत्यानाशों का धुआँधार जग में छा जाए,
बरसे आग, जलद जल जाएँ, भस्मसात् भूधर हो जाएँ;
पाप पुण्य सदसद् भावों की धूल उड़ उठे दाएँ-बाएँ,
नभ का वक्षस्थल फट जाए, तारे टूक-टूक हो जाएँ;
कवि! कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए।[11]

सुभद्रा कुमारी चौहान (16 अगस्त 1904 - 15 फ़रवरी 1948) राष्ट्रीय चेतना की एकमात्र कवयित्री थीं, जिन्होंने भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में वैचारिक रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। उनकी 'झाँसी की रानी' कविता ने अंग्रेजों की चूलें हिला कर रख दी। वीर सैनिकों में देशप्रेम का अगाध संचार करके जोश भरने वाली यह अनूठी कृति आज भी प्रासंगिक है। 'झाँसी की रानी' कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आई, फिर से नई जवानी थी,
गुमी हुई आजादी की, कीमत सबने पहिचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी,
चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।[12]

सोहन लाल द्विवेदी (22 फरवरी 1906 - 1 मार्च 1988) स्वाधीनता आंदोलन युग के एक ऐसे कवि थे, जिन्होंने भारतीय जनता में राष्ट्रीय चेतना जागृति करने, उनमें देश-भक्ति की भावना भरने और युवकों को देश के लिए बड़े से बड़े बलिदान के लिए प्रेरित करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी। वे पूर्णतरू राष्ट्र को समर्पित कवि थे। द्विवेदी जी ने अपनी कविता 'हमको ऐसे युवक चाहिए' में स्वाधीनता की चाह रखने वाले युवकों की आवश्यकता प्रकट की है। यथा -

जिन्हें देश के बंधन लखकर
कुछ न सुहाता हो सुख साधन,
स्वतंत्रता की रटन अधर में
आजादी जिनका आराधन।
सिर को सुमन समझकर जो
अर्पित कर सकते हो माँ पर,
हमको ऐसे युवक चाहिए
सकें देश का जो संकट हर।[13]

श्याम नारायण पाण्डेय (1907 - 1991) ने बहुत सी उत्कृष्ट काव्य-रचनाएँ की हैं, जिनमें 'हल्दीघाटी', 'जौहर', 'तुमुल', 'रूपान्तर', 'जय पराजय', 'गोरा-वध' इत्यादि प्रमुख हैं। उनकी रचना 'हल्दीघाटी' सर्वाधिक लोकप्रिय हुई। राजस्थान की ऐतिहासिक रणभूमि 'हल्दीघाटी', जो अकबर और महाराणा के युद्ध की साक्षी थी, उसी को आधार बनाकर लिखा गया था 'हल्दीघाटी' महाकाव्य। महाराणा प्रताप के ऐतिहासिक त्याग, आत्म बलिदान, शौर्य, स्वतंत्रता के प्रति प्रतिबद्धता एवं जातीय गौरव के उद्बोधन 'हल्दीघाटी' में उस समय के स्वाधीनता प्रेमी युवाओं के बीच विशेष लोकप्रियता अर्जित की। 'जौहर' में चित्तौड़ की रानी पद्मिनी का मनोहारी आख्यान है। रानी पद्मिनी जो न केवल राजपूती स्वाभिमान का, अपितु भारतीय नारी के उस गौरव का प्रतीक है, जो अपने सतीत्व और सम्मान की रक्षा हेतु हँसते-हँसते जौहर की ज्वाला में कूदकर प्राणों की बलि देती है। स्वाधीनता के उस युग में यह रचना स्वतंत्रता की अभिलाषा लिये तरुण देशप्रेमियों को हर प्रकार का बलिदान करने के लिए प्रेरित की थी। 'जौहर' में 'थाल सजाकर किसे पूजने/चले प्रात ही मतवाले?' के प्रत्युत्तर में श्याम नारायण पाण्डेय ने लिखा है -

सुंदरियों ने जहाँ देशहित
जौहर-व्रत करना सीखा,
स्वतंत्रता के लिए जहाँ
बच्चों ने भी मरना सीखा,
वहीं जा रहा पूजा करने,
लेने सतियों की पद-धूल।
वहीं हमारा दीप जलेगा,
वहीं चढ़ेगा माला-फूल।।[14]

रामधारी सिंह 'दिनकर' (23 सितम्बर 1908 - 24 अप्रैल 1974) की कविताओं में प्रारंभ से ही अपने देश के स्वर्णिम अतीत के प्रति लगाव तथा ब्रिटिश कालीन भारत की दुर्दशा के प्रति आक्रोश की अभिव्यक्ति हुई है। उनकी कविताओं में राष्ट्रीय चेतना चरम पर है। 'दिनकर' जी का हृदय स्वभाव से ही राष्ट्रीय था। देश की स्वाधीनता के लिए जिन वीरों ने बलि दी, उनकी जय-जयकार करते हुए उन्होंने लिखा है -

कलम, आज उनकी जय बोल।
जो अगणित लघु दीप हमारे,

तूफानों में एक किनारे,
जल-जलकर बुझ गये किसी दिन,
माँगा नहीं स्नेह मुँह खोल,
कलम, आज उनकी जय बोल।[15]

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में स्पष्ट है कि स्वाधीनता आंदोलन में खड़ी बोली हिंदी साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। हिंदी साहित्यकारों ने न केवल राष्ट्रीय चेतना का साहित्य लिखा है, बल्कि उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय रूप से भागीदारी भी ली है। रामनरेश त्रिपाठी, माखनलाल चतुर्वेदी आदि साहित्यकार तो स्वाधीनता आंदोलन के लिए जेल भी गये थे। स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय साहित्यकारों ने व्यक्तिगत रूप से जो अनुभव किया, उसे उन्होंने अपने साहित्य में भी अभिव्यक्ति दी। खड़ी बोली हिंदी के साहित्यकारों ने अंग्रेजी शासन में भारत की दुर्दशा, भारतवासियों की पीड़ा, अंग्रेजों की निर्दयता, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, सामाजिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय और राजनैतिक जागरूकता आदि को अपने साहित्य का विषय बनाया है। केवल कविताओं में ही नहीं, बल्कि कहानी, निबंध, नाटक और उपन्यास आदि सभी विधाओं में हिंदी साहित्यकारों ने स्वाधीनता आंदोलन हेतु प्रेरक साहित्य का सृजन किया है। हिंदी निबंधकारों में बालकृष्ण भट्ट, भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रताप नारायण मिश्र, रामवृक्ष बेनीपुरी, सरदार पूर्ण सिंह आदि ने अपने राष्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण निबंधों द्वारा स्वाधीनता आंदोलन में वैचारिक योगदान दिया। नाटककारों में भारतेंदु और प्रसाद के अतिरिक्त हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, डॉ. रामकुमार वर्मा और सेठ गोविंद दास आदि ने अपने नाटकों से स्वाधीनता आंदोलन को बल प्रदान किया। हिंदी कहानीकारों में प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, मोहन राकेश, अमरकांत आदि तथा उपन्यासकारों में प्रेमचंद के अतिरिक्त यशपाल, धर्मवीर भारती आदि के साहित्य में राष्ट्रीय चेतना सन्निहित है। खड़ी बोली हिंदी साहित्य के श्रवण और पाठन से पराधीन भारत की जनता स्वाधीनता के प्रति जागरूक हुई, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को सफलता मिली।

संदर्भ

1. बाबा साहेब डा. आंबेडकर संपूर्ण वांग्मय खंड 1, भारत में जातिप्रथा एवं जातिप्रथा उन्मूलन, पृष्ठ 67, डॉ. आंबेडकर प्रतिष्ठान नई दिल्ली, बारहवाँ संस्करण 2019
2. भारत दुर्दशा - भारतेंदु हरिश्चंद्र, संपादक - लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृष्ठ 22, विश्वविद्यालय प्रकाशन गोरखपुर, प्रथम संस्करण 1953
3. हिंदी साहित्य का नवीन इतिहास : डॉ. लाल साहब सिंह, पृष्ठ 127, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, पंचम संस्करण 2011
4. सिद्धार्थ रामू का लेख, वेबपेज-ीपदकप.जीमचतपदज.पद, 6 मई 2019
5. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' - नरेश चंद्र चतुर्वेदी, पृष्ठ 44, साहित्य अकादमी नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 1990
6. भारत भारती - मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ 172, साहित्य सदन चिरगाँव झाँसी, दसवाँ संस्करण 1984
7. चंद्रगुप्त : जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ 152, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, संस्करण 2017
8. एनसीईआरटी, ग्यारहवीं कक्षा की पाठ्य-पुस्तक, तेरहवाँ अध्याय, पृष्ठ 140
9. वेबपेज, कविता कोश, पुष्प की अभिलाषा, 20 मई 2020
10. स्वाधीनता संग्राम के क्रान्तिकारी साहित्य का इतिहास - मदनलाल वर्मा क्रान्त, पृ. 175, प्रवीण प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006
11. स्वतंत्रता पुकारती, संपादक : नंद किशोर नवल रचनाकार, पृष्ठ 180, साहित्य अकादेमी नई दिल्ली, संस्करण 2006
12. मुकुल - सुभद्रा कुमारी चौहान, पृष्ठ 47, ओझाबंधु आश्रम इलाहाबाद, संस्करण 1930
13. युगाधार - सोहनलाल द्विवेदी, पृष्ठ 45, साहित्य भवन इलाहाबाद, संस्करण 1946
14. जौहर ' श्याम नारायण पांडेय, पृष्ठ 4-5, सरस्वती मंदिर वाराणसी, संस्करण 1944
15. यू.पी. बोर्ड, सातवीं कक्षा की पाठ्य पुस्तक, ग्यारहवाँ अध्याय

लेखक हिंदी विभाग, के.जी.के. (पी.जी.) कॉलेज, मुरादाबाद के शोधार्थी है जिसका संबंद्ध - महात्मा ज्योतिबा फुले रोहिलखंड विश्वविद्यालय, बरेली है

बाबासाहेब डॉ.भीमराव अंबेडकर के चिंतन में धर्म

- डॉ. भारती सागर

"स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा जैसे सार्वभौमिक सिद्धांतों पर आधारित मूल्यों की स्थापना श्रेष्ठ और सशक्त राष्ट्र के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करती हैं। इस मामले में उन्होंने बौद्ध धर्म को सर्वाधिक उपयुक्त पाया। अंत में कह सकते हैं कि इस विषय में कोई शंका नहीं है कि डॉ. अंबेडकर करुणा, न्याय और समानता जैसे मूल्यों एवं सिद्धांतों के प्रति गहरी प्रतिबद्धता के अर्थ में अत्यधिक धार्मिक व्यक्ति थे।"

शोध-सार:

उच्च शिक्षित एवं प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के धनी बाबासाहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर की बौद्धिक क्षमताओं का लोहा भारत ही नहीं बल्कि संपूर्ण विश्व स्वीकार कर चुका है। यह उनका नेतृत्व ही था जिसने दलितों में अन्याय और भेदभाव के विरुद्ध संघर्ष की प्रेरणा दी और उनके मार्गदर्शन में दलितों ने अपने मानवाधिकारों को प्राप्त करने की एक महत्वपूर्ण लड़ाई लड़ी। अपनी बौद्धिक क्षमताओं के अंतिम सीमा तक अंबेडकर ने दलितों के मानवाधिकार के साथ-साथ उन्हें सशक्त करने के जो उपाय दिए वे पूरे सैद्धांतिक ना होकर व्यवहारिकता, तार्किकता और मानवता के धरातल पर खरे उतरे इसका उन्होंने पूरा ख्याल रखा। अस्पृश्यता के उन्मूलन की खोज ने उन्हें हिंदू धर्म के मनन मंथन के लिए बाध्य किया, क्योंकि अस्पृश्यता को उन्होंने धर्म सम्मत पाया। वह धर्म जो अस्पृश्यता को धर्म सम्मत बनाता है, उस धर्म का यानी हिंदू धर्म और उसके दर्शन का विश्लेषण परिणाम स्वरूप उनके मनन मंथन का केंद्र बिंदु बन गए। वे आजीवन इस धर्म में मौजूद शोषण, असमानता, अंधविश्वास, जैसी समस्याओं का मंथन करते रहे और इनके निराकरण के लिए आवश्यक संभव सुधार भी अपने लेखों, अपने भाषण और विभिन्न पदों पर होते हुए पूरी शक्ति के साथ अमल में लाने और लागू करने की कोशिश की। प्रस्तुत लेख में बाबासाहेब अंबेडकर की धर्म को लेकर क्या सोच थी, क्या दर्शन था, धर्म क्या है, यह सामाजिक जीवन को कैसे प्रभावित करता है और कैसे यह एक श्रेष्ठ समतावादी, न्याय पूर्ण समाज का सृजन कर सकता है? इन पहलुओं पर डॉ. अंबेडकर के नजरिए से प्रकाश डाला गया है।

बीज-शब्द : बाबासाहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर, धर्म, दर्शन, जाति, समाज।

मूल आलेख :

बाबासाहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर एक उच्च शिक्षित एवं बौद्धिक रूप से प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। यह उनका नेतृत्व ही था जिसने दलितों में अन्याय एवं भेदभाव के विरुद्ध चेतना को जागृत कर संघर्ष करने की प्रेरणा दी। आज भी यह दीपस्तंभ दलितों के लिए प्रेरणा स्रोत बनकर शिक्षा, संगठन और संघर्ष के मूल मंत्र से प्रगति का रास्ता दिखाने वाली शक्ति के रूप में दलितों के हृदय में मौजूद है। बाबा साहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर की बौद्धिक क्षमताओं का लोहा भारत ही नहीं संपूर्ण विश्व स्वीकार कर चुका है। अपनी बौद्धिक क्षमताओं की अंतिम सीमा तक डॉ. अंबेडकर पूरी शक्ति से दलितों और पीड़ितों के मानवाधिकारों के साथ-साथ उन्हें सशक्त करने के उपाय आजीवन अपने भाषणों, लेखों, निबंधों और पुस्तकों में देते रहे। दलित उत्थान से जुड़ा सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक हो या धार्मिक मसला उन्होंने दलितों के हितार्थ जो उपाय सुझाए कोरे सैद्धांतिक ना होकर व्यवहारिकता तार्किकता एवं मानवीयता के धरातल पर भी खरे उतरे इसका उन्होंने पूरा ख्याल रखा।

अस्पृश्यता के उन्मूलन की खोज ने उन्हें धर्म के मनन मंथन को बाध्य किया क्योंकि अस्पृश्यता को उन्होंने अस्पृश्यता को धर्म सम्मत पाया। वह धर्म जो अस्पृश्यता को धर्मसम्मत बनाता है, उस धर्म का यानी हिंदू धर्म और उसके दर्शन का विश्लेषण उनके अध्ययन का केंद्र बिंदु बन गए। प्रस्तुत लेख में बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर की धर्म को लेकर क्या सोच थी, धर्म ने जिन सामाजिक बुराइयों को जन्म दिया है उससे समाज को कैसे मुक्त किया जाए और धर्म की शक्ति से कैसे एक श्रेष्ठ समाज की रचना की जा सकती है जैसे महत्वपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है।

धर्म की अवधारणा :

सामान्यत: धर्म अलौकिक शक्ति में विश्वासो और व्यवहारों की एक व्यवस्था के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है। दुर्खीम कहते हैं धर्म पूजा करने वालों को जोड़ता है ''एक एकमात्र नैतिक समुदाय के रूप में''1 इस तरह धर्म नैतिकता के साथ पारलौकिक विषयों, प्रतीकों, मिथकों की एक विस्तृत व्यवस्था से जुड़ी हुई संकल्पना के रूप में देखा जा सकता है, पर डॉ. अंबेडकर ने अपने चिंतन में धर्म का किसी भी रूप में पारलौकिक या अलौकिक शक्ति के रूप में विवेचन नहीं किया बल्कि उन्होंने इसे एक सामाजिक शक्ति के रूप में देखा। विभिन्न समाजों में धर्म को जिस रूप में प्रतिष्ठित देखते हैं और उससे जो भाव ग्रहण करते हैं उसे इस रूप में स्पष्ट करते हैं'' धर्म का अर्थ देवीय शासन की आदर्श योजना का प्रतिपादन करना है, जिसका उद्देश्य एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था बनाना है जिसमें मनुष्य नैतिक जीवन व्यतीत कर सकें। धर्म से मैं यही भाव ग्रहण करता हूं।''2

यानी धर्म ईश्वर द्वारा निर्मित शासन है। इसका उद्देश्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था देना है, जो मनुष्य के लिए नैतिक जीवन की व्यवस्था के लक्ष्य को पूरा करती है। साथ ही डॉ. अंबेडकर धर्म का विश्लेषण करते समय उपरोक्त संदर्भ में यह भी सिद्ध करते हैं कि धर्म की उत्पत्ति में आदिम समाजों में ईश्वर की कल्पना धर्म का अभिन्न अंग नहीं थी। इसकी पुष्टि हेतु वे धर्म की उत्पत्ति से जुड़े प्रचलित विचारों जादू, टोना, निषेध, प्रतीकों, संस्कारो, उत्सवों में ईश्वरीय सत्ता के महत्त्व को नकारते हुए स्पष्ट करते हैं कि इन क्रियाओं की उत्पत्ति और निरंतरता के पीछे जीव और जीवन की रक्षा का भाव और उद्देश निहित है और इस समय ईश्वरवाद मौजूद नहीं था, पर धर्म धार्मिक क्रियाएं मौजूद थी। इस प्रकार ईश्वर की कल्पना या ईश्वर का तत्व आदिम समाज में आदिम धर्म का अभिन्न अंग नहीं था। यह बाद में प्रस्फुटित हुआ। जीव और जीवन की रक्षा के भाव पहले आया यहीं से धर्म में उत्पत्ति हुई जो कि धर्म, नैतिकता और नैतिक जीवन में अभिन्न संबंध को दर्शाती है। यही वह नैतिक तथ्य हैं जो कि सभी धर्मों का सार है चाहे वह आदिम समाज हो या आधुनिक समाज। दोनों में डॉ. आंबेडकर की दृष्टि में ''धर्म के हित का केंद्र बिंदु यानी जीवन की वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति की रक्षा होती है और उसके वंश का संचालन होता है एक ही है।''3 डॉ. अंबेडकर के अनुसार अपने मूल रूप से धर्म का संबंध ईश्वर से ना होकर धर्म का मूल तत्व या सार जीव और जीवन की रक्षा है, जीव और जीवन की रक्षा कि इस प्रक्रिया में नैतिकता और धर्म में स्वाभाविक और दृढ़ अभिन्न संबंध कब स्थापित हुआ बताना कठिन है, पर ईश्वर की संकल्पना का धर्म में समावेश डॉ. अंबेडकर की नजर में मानव समाज में एक क्रांतिकारी घटना से कम नहीं है।

प्रश्न उठता है कि अगर ईश्वर धर्म का अभिन्न अंग नहीं है तो धर्म में ईश्वर की कल्पना का उदय कब और कैसे हुआ? इस प्रश्न के उत्तर में डॉ. अंबेडकर दो संभावनाओं को व्यक्त करते हैं, एक यह कि ईश्वर की कल्पना के मूल में समाज के महान व्यक्ति की पूजा हो सकती है, जिनके प्रति श्रद्धा से ईश्वरवाद का उदय हुआ। दूसरी संभावना डॉ. अंबेडकर उस दार्शनिक विचार की उत्पत्ति में देखते हैं जिसमें इस प्रश्न का उत्तर ढूंढने का प्रयास रहा है की, यह जीवन किसने बनाया, किसने सृष्टि का निर्माण किया? और इस प्रश्न के उत्तर में ईश्वरबाद का जन्म हुआ और ईश्वर के शासन एवं योजना को जन्म दिया। वस्तुस्थिति जो भी हो इससे यह स्पष्ट होता है कि डॉ. अंबेडकर की नजर में सभ्य समाज में ईश्वर का धर्म की योजना में समावेश है'' ... सभ्य समाज में नैतिकता को धर्म के कारण पवित्रता प्राप्त होती है।''4 अत: जीवन के विभिन्न अवसरों पर एवं अवस्थाओं में जीवन की रक्षा के उद्देश्य से विभिन्न नियमों को गढ़ा गया और उन्हें ईश्वर से जोड़ दिया गया। यहां मैं स्पष्ट करना चाहूंगी कि डॉ. अंबेडकर ने देवी-देवताओं उनकी कहानियों त्योहारों, समारोह को धर्म के अर्थ में कोई स्थान नहीं दिया। वे उस आचरण और नियमों की व्यवस्था को धर्म में स्थान देते हैं जो एक अपने समाज के लिए स्थापित करता है, इसे वे नियमों का धर्म कहते है। डॉ. आंबेडकर स्पष्ट करते हैं कि नियमों के धर्म का पालन व्यक्ति जन्म से ही करना सीखने लगता है। व्यक्ति जिस समुदाय में जन्म लेता है उसमें उसके परिवार सगे संबंधियों को ही नहीं उस समुदाय के देवी देवताओं को भी अंगीकार करता है, जिसकी देवीय शासन योजना के अनुसार व्यक्ति आचरण संहिता का पालन समाज का सदस्य होने के कारण करता है। अत: डॉ. अंबेडकर की दृष्टि में ''धर्म का क्षेत्र और सामान्य जीवन दोनों के साथ संबंध होता है क्योंकि सामाजिक संरचना केवल मनुष्य से ही नहीं बल्कि मनुष्य और देवता दोनों से मिलकर की गई थी'' पर आगे से कहते हैं की आधुनिक समाज ने देवताओं को अपने सामाजिक संरचना से अलग कर दिया है। अब उसमें केवल मनुष्यों का

समावेश है।''5 धर्म की अवधारणा में यह परिवर्तन डॉ. अंबेडकर की दृष्टि में अतीत में घटित धार्मिक धार्मिक क्रांतियो का प्रतिफल है जिसमें धर्म का दर्शन गढ़ा, संशोधित और सृजित किया गया। इसके परिणामस्वरूप आधुनिक समाज मैं धर्म की अवधारणा अपने परिवर्तित स्वरूप में कुछ ऐसी है कि अब धार्मिक आदर्शों का लक्ष्य समूह या समाज ना होकर व्यक्ति है, और धार्मिक नियमों की कसौटी, उनकी उपयोगिता से हटकर न्यायसंगतता में निहित है। यानी धर्म की सार्थकता व्यक्ति और उसके लिए न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था में निहित है।

धर्म और समाज :

अत: डॉ. अंबेडकर के लिए धर्म व्यक्तिगत या निजी मामला नहीं है बल्कि उसकी एक सामाजिक उपयोगिता है। उनके अनुसार धर्म में ईश्वर का स्थान जीवन रक्षक के साधन के रूप में है और धर्म साध्य है सामाजिक जीवन का परिरक्षण और पवित्रीकरण है। उनके शब्दों में '' धर्म जब व्यक्तिगत निजी और जाति का मामला बना रहता है तो वह यदि खतरे का नहीं तो प्रत्यक्ष शरारत का सबब तो बन ही जाता है सही दृष्टि यह है कि भाषा की भांति धर्म भी समाज के लिए है और व्यक्ति को उसे अपनाना ही पड़ता है क्योंकि उसके बिना वह सामाजिक जीवन में भाग नहीं ले सकता।''6 यानी मार्क्सवादियों की तरह की तरह डॉ. आंबेडकर धर्म को समाज एवं व्यक्ति के लिए अनुपयोगी या हानिकारक नहीं मानते बल्कि उनकी दृष्टि में धर्म सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति की सहभागिता को आधार प्रदान करता है। संक्षेप में डॉ. अंबेडकर के अनुसार-

- धर्म सामाजिक मूल्यों को स्थापित करता है, उन्हें सर्वव्यापी बनाता है। यह समाज को एकता में बांधते हैं।
- धर्म सामाजिक मूल्यों को अध्यात्म से जोड़ता है। इन आध्यात्मिक मूल्यों का प्रक्षेपण सर्वव्यापी यथार्थ जगत में करता है।
- सभी धर्म यहां तक कि अनीश्वरवादी भी आध्यात्मिकता पर बल देते हैं, उसकी सत्ता पर विश्वास करते हैं, और उसी विजय की कामना करते हैं।
- धर्म समाज के लिए सामाजिक नियंत्रण की एक एजेंसी के रूप में कार्य करता है। इस मामले में डॉ. अंबेडकर धर्म को राज्य और सरकार से अधिक प्रभावशाली मानते हैं। उनके अनुसार '' धर्म का कर्म भी वही है जो कानून और सरकार का है जिसके द्वारा समाज व्यवस्था को बनाए रखने के लिए समाज व्यक्ति के आचरण पर अंकुश रखता है।''7 आगे वे लिखते हैं'' धर्म सर्वाधिक सशक्त सामूहिक गुरुत्वाकर्षण है और उसके बिना समाज व्यवस्था को उसके परिक्रमा पथ पर रखना संभव ना होगा।''8

इस प्रकार डॉ. अंबेडकर के चिंतन में धर्म एक सामाजिक यथार्थ है, एक सामाजिक शक्ति है, इसका एक विशिष्ट सामाजिक प्रयोजन है, और एक निश्चित सामाजिक कृत्य है जिसकी अनदेखी नहीं की जा सकती। यहां यह स्मरणीय है कि डॉ. आंबेडकर धर्म के सामाजिक महत्व को स्वीकारते हैं पर साथ ही कहते हैं यदि धर्म के कारण समाज में असमानता भेदभाव एवं शोषण को प्रशय मिलता है तो ऐसे धर्म का प्रतिकार किया जाना चाहिए।

हिंदू धर्म, जाति व्यवस्था और धर्मशास्त्र :

यहां यह ध्यान देने योग्य है कि डॉ. अंबेडकर के लिए धर्म पारलौकिक विषय से जुड़ा मुद्दा नहीं है उनके लिए यह विशुद्ध सामाजिक प्रघटना है जो सामाजिक संरचना और संस्थाओं को संभव बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, उदाहरण के लिए हिंदू धर्म में जाति संस्था इसका एक परिणाम है। हिंदू धर्म के विषय में डॉ. अंबेडकर का विचार है कि यह एक परिपूर्ण धर्म है अर्थात इनकी मूल उत्पत्ति उन धर्मगुरुओं के उपदेशों से होती है जो एक अन्य साक्षात्कार के रूप में बोलते हैं, जागृत प्रयासों से उत्पन्न होने के कारण परिपूर्ण धर्म का दर्शन जानना और उसका वर्णन करना सरल है। हिंदू धर्म, यहूदी, ईसाई और इस्लाम धर्म के समान परिपूर्ण धर्म है। हिंदू धर्म के देवीय शासन को तलाश करने की आवश्यकता नहीं। देवीय शासन की हिंदुत्व की योजना को एक लिखित संविधान में स्थापित किया गया। यदि कोई उसे अपनाना चाहे तो वह पवित्र पुस्तक को देख सकता है जिसे 'मनुस्मृति' के नाम से जाना जाता है।''9

डॉ. अंबेडकर कहते हैं हिंदू धर्म नियमों का धर्म है। धर्मशास्त्रों विशेषत: मनुस्मृति आदि में दीक्षा, गायत्रीमंत्र, संस्कारों और संबंधित नियमों के विश्लेषण द्वारा वे स्पष्ट कहते हैं कि हिंदू धर्म धार्मिक अनुष्ठान और नियमों का संग्रह है जो संस्तरण और अस्पृश्यता की वैचारिकी पर आधारित है। सिद्धांत और व्यवहार दोनों में ही भेदभावपूर्ण, अन्यायपूर्ण और शोषणकारी है और जाति जैसी भेदभावपूर्ण संस्था को

प्रतिफलित करता है। नियमों का यह धर्म अपने सभी सदस्यों के जीवन की रक्षा के प्रयोजन को समान रूप से पूर्ण नहीं करता है। दलितों-पीड़ितों के लिए यह प्रश्न महत्वपूर्ण है डॉ. अंबेडकर के चिंतन में इसी प्रश्न के उत्तर में धर्मांतरण की पृष्ठभूमि तैयार होती है। अत: हिंदू धर्म में सुधार की आवश्यकता है। वह सुधार के लिए क्रांतिकारी उपाय सुझाते हैं। वह यह कि इन भेदभाव को नियमों को पोषित करने वाली जाति संस्था का ही उन्मूलन कर दिया जाए बजाय इसके कि इसमें सुधार कार्य हो जैसा कि गांधीजी का मत था। 'एनीहिलेशन ऑफ कास्ट' में वे यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि राजनैतिक एवं संवैधानिक सुधार तब तक सफल नहीं हो सकते जब तक कि सामाजिक सुधार ना हो जाए। अस्पृश्यता का उन्मूलन करने के लिए वास्तविक सामाजिक सुधार यही होगा कि जाति का उन्मूलन किया जाए क्योंकि इसे सुधारा नहीं जा सकता। जाति ने हम सबको इतनी गहराई से बांटा है कि जुड़ने के रास्ते खत्म हो चुके हैं और बाबासाहेब इस सत्य को अच्छे से देख पा रहे थे। उन्होंने इस स्थिति को 'एनीहिलेशन ऑफ कास्ट' में बड़े कड़े शब्दों में उद्घाटित किया। वह स्पष्ट देख पा रहे थे कि जाति के अंदर सौहार्द, समानता भाईचारे की संभावना शून्य है। यह देश के नागरिकों को बांटने वाली शक्ति के रूप में विद्यमान है, इसलिए राष्ट्रीय एकता और सशक्त राष्ट्र के निर्माण के लिए जाति का विनाश होना आवश्यक है।

जाति के उन्मूलन के लिए डॉ. अंबेडकर अंतरजातीय विवाह और सहभोज का सुझाव देते हैं साथ ही उस हिंदू वैचारिकी को समाप्त करने पर बल देते हैं जो धर्मशास्त्रों और स्मृतियों से निर्मित होती है।10 उनकी दृष्टि में जाति की प्रकृति सामाजिक से कहीं ज्यादा मनोवैज्ञानिक है या मानसिक है जिसे इन धर्म ग्रंथों में व्यवस्थित किया गया। अत: अस्पृश्यता के अंत एवं जातिगत भेदभाव तथा अलगाव से मुक्ति हेतु जरूरी है कि उन धार्मिक मान्यताओं, धर्मशास्त्रों को समाप्त किया जाए जिस पर जाति आधारित है, इसीलिए उन्होंने मनुस्मृति सहित अन्य धर्मशास्त्रों का बहिष्कार करने के लिए कहा। जिससे इनके द्वारा दी गई मानसिक गुलामी से मुक्त हो सके फिटजगेरालड लिखते हैं ''इस अवस्था में डॉ. अंबेडकर की दृष्टि फैले हुए कर्मकांड वाद पर केंद्रित थी जिसे मनुस्मृति के धार्मिक सिद्धांतों में सर्वाधिक प्रभावशाली कुटबद्धता प्रदान की गई।''11 उनका यह मानना था कि हिंदू जाति का पालन इसलिए नहीं करते कि वे अमानुष अथवा भ्रात मस्तिष्क के हैं। वे जाति का पालन इसलिए करते हैं क्योंकि वे गहनतापूर्वक धार्मिक हैं। अत: जिस शत्रु से भिड़ना चाहिए वह व्यक्ति नहीं बल्कि जाति संस्था है और धर्मशास्त्र है, जो उन्हें ऐसी अमानवीयता और भेदभाव की शिक्षा देते हैं।

डॉ. अंबेडकर का आदर्श धर्म :

डॉ. अंबेडकर एक समतावादी समाज के निर्माण के लिए हिंदू धर्म द्वारा दी गई मूल्य व्यवस्था को जो जाति संस्था से संचालित होती है उसका विनाश करके उसके स्थान पर नई मूल्य व्यवस्था की स्थापना का आग्रह करते हैं। जिसमें भेदभाव और संस्तरण के स्थान पर समानता, स्वतंत्रता, भाईचारा के सार्वभौमिक मूल्य हो। उनकी दृष्टि में यही वास्तविक धर्म है जो सार्वभौमिक है। हिंदू धर्म में भी यह वैचारिकी उपनिषदों में पाई जाती है। फिट्जगेराल्ड लिखते हैं ''यहां अंबेडकर की यह अंतर्दृष्टि थी कि जिन सिद्धांतों एवं मूल्यों को सामान्यता धर्मनिरपेक्ष कहा जाता है वे उतने ही पवित्र होते हैं जितना उन्हें पारंपरिक रूप से धार्मिक कहा जाता है।''12 एक बेहतर समाज की रचना के लिए डॉ. अंबेडकर हिंदू धर्म में इस परिवर्तन को आवश्यक मानते हैं, जिसका नैतिक आधार और औचित्य उनके इस विचार में देखा जा सकता है कि वे 'एनीहिलेशन अ□फ कास्ट' में वे अपने गुरु डिवी के विचार को रेखांकित करते हुए कहते हैं 'प्रत्येक समाज पर यह भार होता है कि वह अपने अतीत में से तुच्छ चीजों का जो अवांछित हैं उन्हें नष्ट करें और जो सकारात्मक है उनका संरक्षण करें'' ... जिससे बेहतर भविष्य का निर्माण हो सके।''13 अंबेडकर भेदभावपूर्ण जाति संस्था के उन्मूलन को इसी नजरिए से देखते हुए इसके उन्मूलन को नैतिक दृष्टि से उचित मानते हैं और एक श्रेष्ठ समाज के निर्माण के लिए धर्मनिरपेक्षता, समानता, स्वतंत्रता भाईचारा के सार्वभौमिक मूल्यों की स्थापना की पैरवी करते हैं। उनका यह मानना है कि धर्मनिरपेक्षता, स्वतंत्रता, समानता भाईचारा ऐसे मूल्य हैं जो सार्वभौमिक हैं और सभी पर समान रूप से लागू होते हैं। जबकि हिंदू धर्म के मूल्य विशिष्टवादी हैं। जाति के अनुसार अधिकारों और नियमों में विशिष्टता रखते हैं समाज में भेदभाव और शोषण को पोषित करता है। जबकि समानता स्वतंत्रता एवं भ्रातृत्व के धार्मिक सिद्धांत एक धर्मनिरपेक्ष (विरोधाभासी) समाज को संभव बनाते हैं। जिसमें धर्म एक व्यक्तिगत प्रतिबद्धता एवं पसंद की विषय वस्तु बन जाता है। धर्म की यह भिन्न अवधारणा डॉ. अंबेडकर के 'बुद्धा एंड द फ्यूचर ऑफ हीज रिलीजन' में

अंतर्निहित है। जहां वे बौद्ध मत, ईसाई मत, इस्लाम एवं हिंदू धर्म की तार्किकता एवं नैतिक सिद्धांतों की एक तुलनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं और बौद्ध धर्म के पक्ष में निष्कर्ष निकालते हैं।''14 उनकी दृष्टि में यही वह धर्म है जो सबसे अधिक तार्किक वैज्ञानिक और नैतिक है। वह दूसरों को भी इस धर्म को अपनाने के लिए प्रेरित करते हैं। 14 अक्टूबर 1956 को अपने 500000 से अधिक अनुयायियों के साथ अंबेडकर द्वारा बौद्ध धर्म को अंगीकार करना इन सिद्धांतों को वास्तविकता का धरातल प्रदान करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम था। उनकी पुस्तक 'बुद्ध और उनका धम्म' इस विषय में उनके विचारों को समझने में मददगार है। डॉ. आंबेडकर धर्म और धम्म की संकल्पना में अंतर करते हैं वे कहते हैं कि पारंपरिक धर्म में नैतिकता और जीव और जीव के रक्षण का भाव प्रमुख था, जबकि धम्म में नैतिकता ही धम्म है। प्रज्ञा और करुणा से अद्‌भुत यह धम्म समाज को एक सूत्र में बांधने वाली शक्ति के रूप में काम करता है। अत: डॉक्टर अंबेडकर धम्म की संकल्पना के विश्लेषण में इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि प्रेम, भाईचारा और समानता के मूल्यों पर आधारित समाज के सृजन के लिए धम्म की शक्ति का होना परम आवश्यक है। धर्म व्यक्तिगत जीवन की जरूरत है तो धम्म सद्‌भावपूर्ण समाज के निर्माण के लिए परमआवश्यक है।'15 अत: बौद्ध धर्म डॉ. अंबेडकर के चिंतन में नए सामाजिक व्यवस्था का मूल आधार एवं व्यक्तिगत दृष्टि से सर्वाधिक तार्किक नैतिक एवं समतावादी धर्म के रूप में स्थित है।

संक्षेप में फिट्‌जगेराल्ड के शब्दों में यह कह सकते हैं कि डॉ. अंबेडकर के चिंतन में धर्म की जो अवधारणा निहित है आवश्यक रूप से पारलौकिक प्राणियों के विषय में है। अनुभवातीत संसार अथवा मृत्यु के बाद एक जीवन में आध्यात्मिक मोक्ष नहीं है। यह उन मूलभूत मूल्यों के विषय में है जो विभिन्न प्रकार की संस्थाओं को संभव बनाते हैं, एक दृष्टांत में जाति की संस्था (नियमों का धर्म) और दूसरे में प्रजातांत्रिक संस्थाएं जो स्वतंत्रता, समानता एवं भाईचारा के पवित्र सिद्धांतों (वास्तविक धर्म) पर आधारित है।''16 इसी वैचारिकी में जीव और जीवन की रक्षा का वास्तविक भाव निहित है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि नैतिकता और नैतिक विवेक डॉ. अंबेडकर ने अपने चिंतन में कभी भी अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया। समाज में नैतिक विवेक कैसा होगा यह धर्म से निर्धारित होता है क्योंकि इस नैतिक विवेक, नैतिक तथ्य और नैतिक जीवन की उत्पत्ति का स्रोत स्वयं धर्म है, उसके द्वारा जनित संस्थाओं में है। अत: उनकी दृष्टि में धर्म द्वारा जनित संस्थाएं जो मनुष्य के नैतिक जीवन के साध्य को पूर्ण करने में असमर्थ हों उनका उन्मूलन ही उचित है। उनके स्थान पर स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा जैसे सार्वभौमिक सिद्धांतों पर आधारित मूल्यों की स्थापना श्रेष्ठ और सशक्त राष्ट्र के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करती हैं। इस मामले में उन्होंने बौद्ध धर्म को सर्वाधिक उपयुक्त पाया। अंत में कह सकते हैं कि ''इस विषय में कोई शंका नहीं है कि डॉ. अंबेडकर करुणा, न्याय और समानता जैसे मूल्यों एवं सिद्धांतों के प्रति गहरी प्रतिबद्धता के अर्थ में अत्यधिक धार्मिक व्यक्ति थे।''17 निश्चय ही धर्म की शक्ति के महत्व पर उनकी समझ गहरी, प्रशंसनीय और अद्‌भुत है।

संदर्भ :

1. एस. सेलवम., ''भारत एवं हिंदुत्व का समाजशास्त्र: एक पद्धति की ओर'', आधुनिक भारत में दलित दृष्टि एवं मूल्य (संपादक एस .एम. माइकल), सेज एवं रावत पब्लिकेशन नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2010, (प्र. सं. 1999) पृ.160
2. बी.आर.अंबेडकर., बाबासाहेब डॉक्टर अंबेडकर संपूर्ण वांग्मय : हिंदुत्व का दर्शन, खंड 6, (सातवां संस्करण) डॉक्टर अंबेडकर प्रतिष्ठान सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय नई दिल्ली, सातवां संस्करण, 2013, (प्र. सं.1996), पृ.69
3. बी. आर.अंबेडकर., बाबासाहेब डॉक्टर अंबेडकर संपूर्ण वांग्मय : अस्पृश्य का विद्रोह गांधी और उनका अनशन पूना पैक्ट, खंड 10, डॉक्टर अंबेडकर प्रतिष्ठान सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय नई दिल्ली, सातवां संस्करण, 2013, (प्र. सं.1996), (प्र. सं.1996), पृ. 26
4. बी.आर.अंबेडकर., बाबासाहेब डॉक्टर अंबेडकर संपूर्ण वांग्मय : हिंदुत्व का दर्शन, खंड 6, डॉक्टर अंबेडकर प्रतिष्ठान सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय नई दिल्ली, सातवां संस्करण, 2013,(प्र. सं.1996), पृ.27
5. वही, पृ.29
6. बी.आर.अंबेडकर., बाबासाहेब डॉक्टर अंबेडकर संपूर्ण वांग्मय : अस्पृश्य का विद्रोह गांधी और उनका अनशन

पूना पैक्ट, खंड 10, डॉक्टर अंबेडकर प्रतिष्ठान सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय नई दिल्ली, सातवां संस्करण, 2013, (प्र. सं.1996) पृ. 339-340.

7. वही, पृ.342
8. वही, पृ.342
9. वही।
10. टी. फिट्जगेराल्ड, ''अंबेडकर बौद्ध मत एवं धर्म की अवधारणा'', आधुनिक भारत में दलित दृष्टि एवं मूल्य (संपा. एस.एम. माइकल), दलित इन मॉडर्न इंडिया विजन एंड वैल्यूज - अनुवादक विनय कुमार पंत, सेज एवं रावत पब्लिकेशन नई दिल्ली, पृ.116
11. उपरोक्त, पृ.116
12. उपरोक्त, पृ.114
13. इग्नू. बी.आर. अंबेडकररू विचारक, उनका समय, BAB - 101, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, (2018), पृ.90 .
14. टी. फिट्जगेराल्ड, ''अंबेडकर बौद्ध मत एवं धर्म की अवधारणा'', आधुनिक भारत में दलित दृष्टि एवं मूल्य (संपा. एस.एम. माइकल), दलित इन मॉडर्न इंडिया विजन एंड वैल्यूज - अनुवादक विनय कुमार पंत, सेज एवं रावत पब्लिकेशन नई दिल्ली, पृ.119
15. डी.आर.सिरसवाल, ''रोल ऑफ रिलिजन एंड स्पिरिचुअल वैल्यू इन शेपिंग ह्यूमैनिटी (ए स्टडी डॉक्टर बीआर अंबेडकर रिलीजियस थॉट्स)'', माइलस्टोन एजुकेशन रिव्यू, वर्ष-07 नं. 01, अप्रैल 2016, पृ. 13-15, https://phAlpapers.org@archAve@SARTRO-2.pdf से प्राप्त
16. टी. फिट्जगेराल्ड, ''अंबेडकर बौद्ध मत एवं धर्म की अवधारणा'', आधुनिक भारत में दलित दृष्टि एवं मूल्य (संपा. एस.एम. माइकल), दलित इन मॉडर्न इंडिया विजन एंड वैल्यूज - अनुवादक विनय कुमार पंत, सेज एवं रावत पब्लिकेशन नई दिल्ली, पृ.118
17. वही, पृ.121

डॉ. भारती सागर
सहायक आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र, आर.सी.ए. कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय मथुरा,
bharatisagar01@gmail.com

कबीर के दोहों में जीवन-दर्शन आध्यात्मिकता और यथार्थ का संगम

– मोनिका पटेल

"आत्म-साक्षात्कार ऊँचाइयाँ भी हैं और धरातलीय यथार्थ भी। साथ ही, वे यह भी स्पष्ट करते हैं कि ईश्वर की प्राप्ति किसी विशेष स्थान, वेशभूषा या परंपरा में नहीं, बल्कि प्रेम, करुणा, और सच्चे आचरण में है।कबीर के दोहों में जो जीवन-दर्शन उभरता है, उनका अवलोकन जीवन के प्रत्येक पहलू को समेटता है वह आत्मशुद्धता, आत्मनिरीक्षण, आत्म-मंथन की बात करता है, साथ ही सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार भी करता है।"

सारांश

कबीर के दोहों में जीवन-दर्शन आध्यात्मिकता और यथार्थ का संगम शीर्षक शोध में संत कबीरदास के काव्य में निहित जीवन-दृष्टि का विश्लेषण किया गया है। कबीर का काव्य जहाँ एक ओर आत्मा-परमात्मा के अद्वैत को उद्घाटित करता है, वहीं दूसरी ओर,सामाजिक बुराई, जातिवाद, पाखंड और धार्मिक दिखावे पर तीखा प्रहार करता है। उनके दोहे सादगी, सहजता और लोकभाषा में गहन तत्वज्ञान प्रस्तुत करते हैं, जो भारतीय जीवन-दर्शन की सशक्त अभिव्यक्ति हैं। कबीर की वाणी व्यक्ति को आत्मचिंतन, साधना और सत्य की खोज की प्रेरणा देती है। कबीर का जीवन-दर्शन केवल आध्यात्मिक उन्नयन तक सीमित न होकर, सामाजिक यथार्थ से भी गहरे जुड़ा है। उनका दृष्टिकोण व्यक्ति और समाज दोनों के लिए मार्गदर्शक है, जिससे आज के संदर्भ में भी व्यापक शिक्षाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। कबीर का आध्यात्मिक दृष्टिकोण निर्गुण ब्रह्म पर आधारित है, जिसमें आत्मा की परमात्मा से एकात्मकता ही मुक्ति का मार्ग है। वे आडंबरहीन साधना और भीतर की सच्चाई को ही आध्यात्मिकता का सार मानते हैं। साथ ही, कबीर का यथार्थ-बोध भी अत्यंत गहरा है। वे समाज में फैली कुरीतियों, धार्मिक पाखंडों और जातिवाद पर तीव्र प्रहार करते हैं। उनके दोहे आम जनमानस को सजग करते हैं और आत्मनिरीक्षण की प्रेरणा देते हैं। इस शोध में कबीर के प्रतिनिधि दोहों के विश्लेषण द्वारा यह स्थापित किया गया है कि उनका जीवन-दर्शन आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना अपने समय में यथाकृत एक ऐसा दर्शन जो आत्मिक उन्नयन के साथ-साथ सामाजिक चेतना भी प्रदान करता है।

मुख्य शब्द : कबीर, जीवन-दर्शन, दोहा, आध्यात्मिकता, यथार्थ, सामाजिक चेतना, भक्ति आंदोलन।

प्रस्तावना

भारतीय संत परंपरा में कबीरदास का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे एक ऐसे कवि-संत हैं, जिन्होंने अपने दोहों के माध्यम से न केवल आध्यात्मिकता का संदेश दिया, बल्कि जीवन के कठोर यथार्थ से भी पाठक का परिचय कराया। उनका काव्य साधारण जन-जीवन की भाषा में, गहरी अनुभूति और सटीक अभिव्यक्ति के साथ प्रस्तुत होता है। कबीर का जीवन-दर्शन कर्म, भक्ति, सामाजिक समरसता, आत्मा-परमात्मा के संबंध और मानवता की बुनियादी वास्तविकता पर आधारित है।यह शोधपत्र कबीर के दोहों में निहित जीवन के सार को आध्यात्मिकता और यथार्थ के दृष्टिकोण से समझने का प्रयास है।

उद्देश्य

इस शोध का मुख्य उद्देश्य कबीर के दोहों में निहित जीवन-दर्शन की उस विशेषता को उजागर करना है, जिसमें आध्यात्मिक चेतना और सामाजिक यथार्थ का संतुलित संगम दृष्टिगत होता है। यह अध्ययन निम्नलिखित बिंदुओं पर केंद्रित है

1. कबीर के दोहों में जीवन के मूलभूत तत्वों – जैसे आत्मा, परमात्मा, मृत्यु, प्रेम, कर्म और मानव- जाति की व्याख्या का विश्लेषण करना।
2. समकालीन समाज में कबीर के दोहों की प्रासंगिकता और उनके विचारों के आधुनिक सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों से संबंध को स्थापित करना। कबीर के दोहों में जीवन का दृष्टिकोण की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन।
3. दोहों में व्यक्त सामाजिक यथार्थ-जैसे पाखंड-विरोध, जाति-भेद, धार्मिक कट्टरता और नैतिक पतन के प्रति उनकी तीव्र आलोचना का मूल्यांकन करना।
4. कबीर की भाषा, प्रतीक और शैली के माध्यम से उनके जीवन-दर्शन की प्रभावशीलता को विश्लेषित करना।
5. कबीर द्वारा प्रतिपादित आध्यात्मिक विचारों (निर्गुण भक्ति,

आत्मज्ञान, गुरु की महत्ता आदि) की गहराई को समझना।

6. आत्म-दर्शन और यथार्थ के द्वंद्व या संगम की खोज।
7. आधुनिक समाज में कबीर के विचारों की प्रासंगिकता।

इस प्रकार यह शोध कबीर के साहित्य में समाहित आध्यात्मिक ऊँचाइयों और यथार्थ की गहराइयों का समन्वय प्रस्तुत करता है, जो भारतीय संत परंपरा और लोकचेतना की अमूल्य निधि है।

विषयवस्तु

भारतीय संत परंपरा में कबीर एक ऐसे चिन्तक कवि हैं जिन्होंने अपने दोहों के माध्यम से जीवन के गहनतम सत्यों को अत्यंत सरल, सटीक और प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया। कबीर न केवल एक संत कवि थे, अपितु वे सामाजिक चेतना के जाग्रत स्वर थे, जिन्होंने धर्म, जाति, स्वांग. और आडंबर के विरुद्ध निडरता से आवाज उठाई। कबीर की वाणी में एक ओर आध्यात्मिक ऊँचाई है, तो दूसरी ओर जीवन के यथार्थ को टटोलने वाली पैनी दृष्टि भी। वे आत्मबोध, ईश्वर प्रेम और भक्ति को महत्व देते हैं, किंतु साथ ही सामाजिक विसंगतियों को उजागर करते हुए मनुष्य से स्व-विश्लेषण और नैतिक जीवन की अपेक्षा करते हैं।उनके काव्य का मूल स्वर सहज जीवन की ओर प्रवृत्त करता है, जिसमें आत्मा और परमात्मा का संबंध एक जीवंत अनुभव के रूप में प्रकट होता है। उनके दोहे भक्ति और दर्शन का अद्वितीय संगम प्रस्तुत करते हैं, जहाँ न तो केवल पारलौकिकता है और न ही केवल सामाजिक छिद्रान्वेषण,बल्कि दोनों के बीच संतुलन है।

कबीर का आत्म-दर्शन दृष्टिकोण

कबीर ने परंपरागत रीति-रिवाज, मूर्ति पूजा और बाह्याचारों का विरोध करते हुए आत्मा की निष्कलुषता और नाम-स्मरण को प्रधानता दी। उन्होंने निराकार भक्ति का समर्थन किया।

दोहा -

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।

कबीर का आध्यात्मिक दृष्टिकोण भारतीय संत परंपरा में एक अनूठा स्थान रखता है। कबीर का मानना है कि सच्चा ज्ञान पुस्तकों में नहीं, अनुराग और अनुभूति में है। यह दृष्टिकोण उन्हें एक प्रखर आध्यात्मिक मार्गदर्शक बनाता है। उन्होंने न तो वेद-पुराणों की व्याख्या को अंतिम यथार्थ माना, न ही बाह्य पूजा-पद्धतियों को मोक्ष का मार्ग स्वीकारा। उनका अध्यात्म अंर्तज्ञान, नाम-स्मरण, और मानवता की सेवा पर आधारित था। वे निराकार भक्ति का समर्थन किया। वे एक ऐसे ईश्वर के, जो निराकार, सदा उपस्थित और अंतरात्मा में विद्यमान है। निर्गुण भक्ति की स्थापना कबीर ने निर्गुण भक्ति मार्ग को अपनाया, जिसमें ईश्वर को किसी मूर्ति, मंदिर, मस्जिद या कर्मकांडों से नहीं, बल्कि आत्मा के भीतर खोजा जाता है। वे कहते हैं-

जो घर फूंके आपना, चले हमारे साथ।
साधु ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।।

यहाँ कबीर स्वयं को तपे हुए साधक के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जो अपने अहं (स्व) को जलाकर ही अध्यात्म के मार्ग पर अग्रसर होता है। आत्मा और परमात्मा का संबंध कबीर के लिए आत्मा और परमात्मा का संबंध अद्वैत (एकत्व) का है। वे मानते हैं कि आत्मा जब अज्ञान,मोह और माया के बंधनों से मुक्त होती है, तब वह परमात्मा में विलीन हो जाती है।

जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तथ्य कहे कबीर जानी।।

अर्थ-आत्मा और परमात्मा का भेद केवल अज्ञानवश है। जैसे घट के फूटते ही जल जल में मिल जाता है, वैसे ही आत्मा का परमात्मा से मिलन संभव है।

कबीर और यथार्थ का बोध

कबीर ने सामाजिक यथार्थ को बिना किसी संकोच के उजागर किया। उन्होंने जातिवाद, आडंबर, धार्मिक प्रपंच और सामाजिक विषमता की आलोचना की।

दोहा

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।।

यह दोहा सामाजिक यथार्थ की कठोरता को सामने लाता है जहाँ बाह्य पहचान से ऊपर ज्ञान और गुण की प्रतिष्ठा को रखने की बात की गई है। कबीरदास न केवल एक संत और अध्यात्मवेत्ता थे, बल्कि एक सच्चा रास्ता भी थे। उन्होंने समाज को जैसा देखा और वैसा ही वर्णित किया, जैसा वह वास्तव में बिना किसी आडंबर, अलंकरण या मिथ्या आदर्श के। उनका सच्चा -बोध अनुभव, सामाजिक निरीक्षण, आत्मचिंतन और जनजीवन की गहराइयों से उपजा था। कबीर के दोहे काव्यात्मक रूप में जीवन की उन कठोर सच्चाइयों को प्रस्तुत करते हैं, जिनसे आम व्यक्ति रोज गुजरता है।

1. यथार्थ मार्ग के धरातल पर सामाजिक आलोचना

कबीर ने अपने समय की सामाजिक विडंबनाओं को उजागर किया, साथ ही जातिवाद, पाखंड, धार्मिक वैमनस्य और असमानता पर तीक्ष्ण आघात किया।

दोहा

कासी काबा एक है, एकै राम रहीम।
हिन्दू मुसलमान दुहूँ में, एकै प्राण महीम।।

यह दोहा धार्मिक द्वंद्व की यथार्थता को उजागर करता है, जहाँ धर्म के नाम पर समाज विभाजित है, जबकि आत्मा सभी में एक समान है।

2. सामाजिक सुधार एवं सामान्य जीवन-दृष्टि

कबीर का यथार्थबोध केवल वैचारिक नहीं, व्यवहारगत भी था। वे कहते हैं कि जीवन का सच्चा माप आत्मा-परमात्मा के बोध में नहीं, बल्कि हर जीव-जन्तु के प्रति करुणा और निष्पक्ष व्यवहार में निहित है।

दोहा

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो मन देखा अपना, मुझसा बुरा न कोय।

धर्म के नाम पर पाखंड का पर्दाफाश- कबीर ने देखा कि धर्म के नाम पर पंडित, मुल्ला, पुरोहित और शास्त्रवादी जनसामान्य को भ्रमित कर रहे हैं। उन्होंने इस स्थिति का यथार्थ चित्रण किया।

दोहा

पढ़ि पढ़ि पंडित जो हुआ, फिरि पढ़ि काहे कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।

धार्मिक ग्रंथों का पठन-पाठन तभी तक सार्थक है जब उससे जीवन में अनुराग, करुणा और सहानुभूति उत्पन्न हो अन्यथा वह केवल शब्दों का भार है।

आध्यात्मिकता और यथार्थ का संगम

कबीर के दोहों में एक विशेषता यह है कि वे आध्यात्मिक बोध को जीवन की यथार्थ भूमि से जोड़ते हैं। उनके लिए अध्यात्म कोई पलायन नहीं, बल्कि यथार्थ को देखने और जीने का दृष्टिकोण है।

दोहा

साधु ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहि रहे, थोथा देई उड़ाय।।

विश्लेषण

कबीरदास भारतीय संत-काव्य परंपरा के ऐसे विशिष्ट कवि हैं जिनकी रचनाओं में आध्यात्मिक अनुभूति और सामाजिक यथार्थ का अद्‌भुत संतुलन देखने को मिलता है।यहाँ अध्यात्म और यथार्थ का अद्‌भुत समन्वय है एक संत को ऐसा होना चाहिए जो उद्देश्यपूर्ण तत्वों को ग्रहण करे और निरर्थक को छोड़ दे। यह दृष्टिकोण समाज के प्रत्येक स्तर पर लागू होता है। उनके दोहे जीवन की गहन सच्चाइयों को प्रदर्शित करते हुए आत्मा और परमात्मा के संबंध की तत्वज्ञान भी करते हैं। कबीर न तो केवल संत हैं, न केवल समाज-सुधारक एक द्रष्टा हैं,जिन्होंने अध्यात्म और यथार्थ को परस्पर विरोध नहीं, बल्कि संपूरक रूपों में देखा।

कबीर की भाषा और शैली में जीवन-दर्शन

कबीर की भाषा सधुक्कड़ी है जो जनभाषा के निकट है। उन्होंने कठिन तत्वों को सहज शब्दों में प्रस्तुत किया।

दोहा

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय।।

यह दोहा आत्मनिरीक्षण की ओर प्रेरित करता है यथार्थ की ज्ञान के साथ-साथ आंतरिक अध्यात्म की ओर भी इंगित करता है।

समाज-सुधार और जीवन-दृष्टि

कबीर ने स्त्री, दलित, गरीब, हर उस व्यक्ति के पक्ष में स्वर उठाया जिसे समाज ने हाशिए पर डाल दिया। उनका जीवन का दृष्टिकोण केवल मोक्ष की प्राप्ति तक सीमित नहीं, बल्कि समाज की वास्तविक समस्याओं से भी संबंधित है।

दोहा

माटी कहे कुम्हार से, तू क्या रोंदे मोहे।
एक दिन ऐसा आएगा, मैं रौंदूंगी तोहे।।

यह दोहा जीवन की चक्रवातीय प्रकृति, कर्मफल और सत्ता-संबंधों की यथार्थता को सामने लाता है। यहाँ अध्यात्म और यथार्थ दोनों दृष्टियाँ एक साथ चलती हैं।कबीर न केवल संत और कवि थे, बल्कि एक बेखौफ समाज-सुधारक भी थे। उन्होंने अपने समय की जड़ सामाजिक संरचनाओं, धार्मिक पाखंड, जातिवाद, स्त्री-विरोध, और शोषण पर तीव्र प्रहार किए। कबीर की जीवन-दृष्टि में आध्यात्मिक उन्नयन के साथ-साथ सामाजिक न्याय और समरूपता को भी महत्त्व प्राप्त है। उनका प्रत्येक दोहा समाज को आईना दिखाता है और जीवन को सत्य के धरातल पर समझने की प्रेरणा देता है।

1. जाति और वर्ण-व्यवस्था का विरोध

कबीर ने जातिवाद को मानवता का सबसे बड़ा दोष माना। उन्होंने जन्म पर आधारित किसी भी सामाजिक श्रेष्ठता को सिरे से नकारा।

समकालीन संदर्भ में कबीर का जीवन-दर्शन

आज के भौतिकवादी युग में कबीर के दोहे हमें आत्मचिंतन, सहिष्णुता और सच्चे मानवीय मूल्यों की ओर लौटने की प्रेरणा देते हैं। आधुनिक समाज में जातिवाद, धार्मिक कट्टरता और मूल्यहीनता के दौर में कबीर की शिक्षाएँ अत्यंत प्रासंगिक हैं। कबीरदास का जीवन-दर्शन न केवल मध्यकालीन भारतीय समाज की असंगति पर चोट करता है, बल्कि वह आज के आधुनिक समाज के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक है। वर्तमान युग में जब मनुष्य भौतिकता की दौड़ में आत्मिक शांति से विमुख होता जा रहा है, कबीर का निर्गुण भक्ति पर आधारितअध्यात्म हमें भीतर झाँकने और आत्मा से साक्षात्कार करने की प्रेरणा देता है। उन्होंने 'नाम' को साधना का केंद्र बनाया, जो आज के चिंताग्रस्त और भटकते हुए जीवन में स्थिरता और सादगी का संदेश देता है।कबीर का चिंतन ऐसे मूल्यों और विचारों पर आधारित है जो आज के सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं नैतिक संकटों के समाधान प्रस्तुत करते हैं। सामाजिक असमानता और जातिवाद,जो आज भी विविध रूपों में विद्यमान हैं, कबीर की दृष्टि में नितांत अमानवीय हैं। उनका प्रसिद्ध दोहा

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।।

आज भी शिक्षा, राजनीति, रोजगार और विवाह के क्षेत्र में जातिगत भेदभाव को चुनौती देता है। धार्मिक कट्टरता, जो वर्तमान समय में एक गहरा संकट बन चुकी है, उसके विरुद्ध कबीर का जीवन का परिप्रेक्ष्य सहिष्णुता, एकात्मता और 'ईश्वर एक है' की मनोभाव को प्रमुखता देता है। कबीर हिंदू-मुसलमान दोनों पंथों पाखंडो की आलोचना करते हुए मानव धर्म की स्थापना करते हैं।

निष्कर्ष

कबीर के दोहे भारतीय ज्ञान, सामाजिक चेतना और मानवीय मूल्यों का सजीव महत्व प्रतिबिंब करते हैं। उनके दोहों में जीवन के विविध पक्षों जैसे माया-मोह का त्याग,आत्मा-परमात्मा का संबंध, कर्म की महत्ता ,मानव-मानव में भेदभाव का विरोध का अत्यंत सरल और प्रभावोत्पादक चित्रण मिलता है। उनकी आध्यात्मिकता को केवल साधना या कर्मकांड नहीं मानते, बल्कि उसे जीवन के यथार्थ से जोड़कर देखते हैं। उनके अनुसार, सच्चा साधक वही है जो सत्य के मार्ग पर चले, पाखंड और अहंकार से मुक्त रहे तथा हर प्राणी में ईश्वर का दर्शन करे। उनके दोहों में वर्णित आध्यात्मिक दृष्टिकोण, आडंबर और ढोंग, जाति-पांति के विरुद्ध एक विद्रोही स्वर के रूप में सामने आता है। वह किसी एक विचारधारा तक सीमित नहीं है। उसमें आत्म-साक्षात्कार ऊँचाइयाँ भी हैं और धरातलीय यथार्थ भी। साथ ही, वे यह भी स्पष्ट करते हैं कि ईश्वर की प्राप्ति किसी विशेष स्थान, वेशभूषा या परंपरा में नहीं, बल्कि प्रेम, करुणा, और सच्चे आचरण में है।कबीर के दोहों में जो जीवन-दर्शन उभरता है, उनका अवलोकन जीवन के प्रत्येक पहलू को समेटता है वह आत्मशुद्धता, आत्मनिरीक्षण, आत्म-मंथन की बात करता है, साथ ही सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार भी करता है।

संदर्भ सूची -

- सिंह, नामवर. कबीर : दर्शन और साहित्य. राजकमल प्रकाशन, पृ. 58, 94.
- द्विवेदी, हजारीप्रसाद. भारतीय संत परंपरा. साहित्य भवन, पृ. 120.
- दास, श्याम सुंदर, संपादक. कबीर ग्रंथावली. नागरी प्रचारिणी सभा, पृष्ठ 23, 46, 102.
- शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. हिंदी साहित्य का इतिहास. लोकभारती प्रकाशन, पृ. 147, 160
- शर्मा, रामविलास. समाज और संत. राजकमल प्रकाशन.
- माचवे, प्रभाकर. कबीर की काव्य-चेतना. पृ. 34, 67.
- भदौरिया, शिवबहादुर सिंह. कबीर की काव्य चेतना. हिंदी साहित्य निकेतन, गाजियाबाद, पृ. 47, 82.
- शास्त्री, हरिनारायण. निर्गुण भक्ति और कबीर. प्रयागरू हिंदी साहित्य सम्मेलन, 1985.
- यादव, वीरेंद्र. भक्ति आंदोलन और सामाजिक यथार्थ. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011.
- कबीरदास. बीजक. संपादक श्याम सुंदर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1958.
- कबीर और उनका युग हजारीप्रसाद द्विवेदी प्रकाशक राजकमल प्रकाशन, 2012,पृष्ठ संख्या अध्याय 3 धार्मिकता और यथार्थ पृ. 65-96

मोनिका पटेल
पी.एच.डी. इतिहास विभाग
साँची बौद्ध भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, साँची, रायसेन; (म.प्र.) 464661ए
patelmonika675@gmail.com

मानव मूल्य के पोषक : कबीरदास

- परमजीत कुमार पंडित

> "मनुष्यता को पहचानने के सम्बन्ध में कबीर महामानव थे। मानवता पोषक किसी भी जाति, धर्म से उनकी मित्रता हो सकती थी। मानवता की विघटनकारी शक्तियों से उनकी दुश्मनी थी। जहाँ वे एक ओर पंडित और योगी को फटकारते हैं वहीं दूसरी ओर मौलवी और फ़कीर की खबर लेने में उन्हें फक्र का अनुभव होता था।"

भारतीय जनमानस में अपने फक्कड़ाना स्वभाव तथा बेवाक वाणी के लिए सुप्रसिद्ध संत कबीरदास का नाम हिंदी भक्ति साहित्य के निर्गुण शाखा में अग्रणीय कवि, समाज सुधारक, मानवता के पोषक के रूप में समादृत है। जिस समय कबीरदास वर्तमान हुए उस समय समाज की दशा और दिशा अत्यंत सोचनीय थी। अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक समस्याएँ अपनी जड़ें जमा चुकी थीं। धार्मिक रूढ़ियाँ, अंधविश्वास, कुरीतियाँ, ऊँच-नीच, छुआछूत, वर्ण व्यवस्था, मंदिर-मस्जिद व हिन्दू-मुस्लिम के झगड़े आदि अपनी चरम सीमा पर थे। मानव-मूल्यों एवं संवेदनाओं का निरंतर ह्रास हो रहा था। जनता एक ओर मुसलमान शासकों की धर्मान्धता से दुखी, शोषण व अत्याचार से पीड़ित थी, वहीं धार्मिक और वैचारिक कर्मकांड व पाखंड से धर्म का पतन हो रहा था, विचारशीलता का लोप हो रहा था। संत कबीर के समय की सामाजिक व्यवस्था का ढाँचा लड़खड़ाया हुआ था। मुसलमानों में मजहबी जोश से लबरेज कट्टर भातृत्व-भावना थी। हिन्दुओं में अनेक जातियाँ-उपजातियाँ बन चुकी थीं, उन्होंने अन्य मतधर्मी से अपने-आप को अलग दिखाने के लिए सामाजिक नियमों, धार्मिक-विधानों एवं सांस्कृतिक रीति-रिवाजों को अत्यंत कठोर बना दिया था। बाह्याडम्बर जैसे कर्मकांड हिन्दुओं और मुसलमानों को हीनताबोध व घोर निराशा से घेरकर अंधकार की ओर ले जा रहे थे। वैमनस्य और सांप्रदायिकता की भावना दोनों जातियों के बीच गहरी खाई खोदने का काम कर रही थी। सुप्रसिद्ध आलोचक रामचंद्र तिवारी अपनी आलोचना पुस्तक 'कबीर-मीमांसा' में लिखते हैं- ''जनता का बौद्धिक स्तर बहुत सामान्य था। उसमें अनेक प्रकार के अंध-विश्वास प्रचलित थे। वह टोना-टोटका, शकुन-अपशकुन, भूत-प्रेत, झाड़-फूँक, तंत्र-मंत्र और जादू-मंतर के चक्कर में पड़ी रहती थी। उसमें न राष्ट्रीय भावना थी न राजनीतिक चेतना। धर्म के नाम पर वह अवश्य प्राण उत्सर्ग कर सकती थी। तीर्थ, व्रत, नियम-संयम, उपवास एवं पर्व-त्योहार के साथ ही अनेक प्रकार के संस्कार जनता में प्रचलित थे। इनका नियमपूर्वक पालन करना ही धर्म समझा जाता था। सब मिलाकर कबीरयुगीन समाज गतिशील नहीं था। उस समय की जीवन-चेतना विश्वास- प्रधान, रुढ़िग्रस्त, धर्मकेन्द्रित, संकीर्ण, प्रेरणारहित और नैतिकता के आग्रह से पूर्ण थी।'' इसलिए प्रसिद्ध इतिहासकार विन्सेंट स्मिथ ने इस काल के सम्बन्ध में स्पष्ट कह दिया था कि उसका कोई वर्णन करने योग्य इतिहास ही नहीं है। (The Indian commonalty has no history that can be told.) इस्लाम के आगमन से हिन्दुओं के सामाजिक-धार्मिक मूल्यों में कोई मौलिक परिवर्तन तो नहीं हुआ किन्तु चुनौती अवश्य मिली। धर्म, दर्शन, कला, साहित्य, संस्कृति, राजनीति और समाज का सामन्तीकरण हो गया था। हिंदी साहित्य के इतिहास का मध्यकाल अत्यंत अस्त-व्यस्त, अव्यवस्था, असफलता, उत्पीड़न, संघर्ष और शोषण का समय था। समाज दिशाहीन और पतन के पथ पर अग्रसर हो रहा था। मनुष्य के जीवन में घोर नैराश्य ने जगह बना लिया था। ऐसे ही समय में हिन्दुओं और मुसलमानों की दुर्बलताओं पर जमकर प्रहार करनेवाला भक्तिभाव से प्रभावित निर्गुण संत कवियों का एक समुदाय उभर कर आया; कबीर, धन्ना, दादूदयाल, गुरु नानक, संत पीपा आदि। उन्होंने विकृत सामाजिक ढाँचे पर प्रहार कर भातृत्व-भावना से युक्त, एक्य भावना से संपृक्त तथा मूल्य-बोध से प्रेरित समाज के निर्माण का स्तुत्य प्रयास किया। कबीर साहित्य के गहन अध्येता आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने

लिखा है, ''वे सिर से पैर तक मस्तमौला, स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़, भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के सामने प्रचण्ड, दिल के साफ, दिमाग के दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वन्दनीय थे। युगावतार की शक्ति और विश्वास लेकर पैदा हुए थे और प्रवर्तक की दृढ़ता उनमें वर्तमान थी, इसीलिए युग प्रवर्तन कर सके।''

तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था से कबीर असंतुष्ट थे। उन्होंने अपने क्रांतिकारी विचारों द्वारा सामाजिक कुप्रवृतियों, विषमताओं, विडंबनाओं से मानव-आत्मा को मुक्त कराने का स्तुत्य प्रयास किया। बाबू श्यामसुंदर दास 'कबीर ग्रंथावली' में कबीर के 'आँखिन देखि' के फलस्वरूप उत्पन्न विचार को स्पष्ट करते हैं- ''वे इस बात का अनुभव करते थे कि शारीरिक स्वातंत्र्य के पहले विचार स्वातंत्र्य आवश्यक है। जिनका मन ही दासता की बेड़ियों से जकड़ा हो, वह पाँवों की जंजीरें क्या तोड़ सकेगा। उन्होंने देखा था कि लोग नाना प्रकार के अंधविश्वासों में फँसकर हीन जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अत: लोगों को इसी से मुक्त करने का प्रयत्न किया।'' कबीर मानव मूल्यों के रक्षक थे। वे मानव-मूल्यों के विकास में बाधक तत्त्वों से मुठभेड़ करते हैं। वे इस क्रम में धार्मिक पाखंडों, सड़ी-गली मान्यताओं, सामाजिक कुरीतियों, अनाचारों, पारस्परिक विरोधों आदि का विरोध अपनी वाणी द्वारा करते हैं। उनमें सामाजिक क्रांति उत्पन्न करने की अद्‌भुत क्षमता थी और मानव के चित्तवृतियों को परिमार्जित करके हृदय को उदारमना बनाने का अनुपम सामर्थ्य भी। कबीर के अनुसार मानव मानव में कोई भेद नहीं, क्योंकि सम्पूर्ण व्यक्त जगत एक ही तत्त्व से उत्पन्न हुआ है। इसीलिए यह भेद दृष्टि मिथ्या है और अज्ञान का द्योतक है। ऐसे समय में कबीर आध्यात्मिक प्रेरणा को सामने रखकर उनको फटकारते हैं। इस जगत में एक ही ज्योति सबमें प्रकाश रूप में विद्यमान है। जब कोई दूसरा तत्त्व है ही नहीं तो भेद क्यों? एक ही बूँद से इस व्यापक सृष्टि का निर्माण हुआ है फिर ब्राह्मण और शूद्र में भेद क्यों? वे लिखते हैं- ''एक बूँद तैं सृष्टि रची है कौन ब्राह्मण कौन सूद।'' कहने का तात्पर्य यही है कि जिस प्रकार ब्राह्मण के घर में संतान जन्म लेता है उसी प्रकार शूद्र के घर में भी। तो भेद क्यों है? उसी प्रकार अगर तुरक अलग होते तो माता के गर्भ में ही उनका खतना हो गया होता।

कबीर समस्त प्रकार के बाह्याचार का विरोध करते हैं। उनकी आस्था कर्म-विधान में है। वे हाट-बाजार में ध्यान का प्रदर्शन करने वाले योगियों को फटकारते हैं। क्योंकि मन का योग कोई विरला ही साध पाता है, इसके वे पक्ष में हैं। उन्होंने विवेक रहित छापा-तिलक लगाने वाले वैष्णवों को भी आडम्बरवादी ही माना है। उन्होंने कहा है- ''कबीर वैश्नो भय तो का भय बुझ्या नाहिं बमेक। छापा तिलक बनाइ करि, दगध्या लोक अनेक।।'' कबीरदास समस्त प्रकार के धार्मिक दुरूहता एवं कट्टरता के खिलाफ प्रखर हुए और आत्मीय शुद्धता एवं उपयोगितावादी धर्म की स्थापना पर जोर दिया जिसमें लोक एवं उससे जुड़े तत्त्वों का समावेश किया। उन्होंने बड़ा ही प्रासंगिक उद्‌घाटन किया है- ''पाथर पूजै हरि मिलें, तो मैं पूजूँ पहार। घर की चाकि कोई न पूजै, जेहि का पीसा खाय।।'' भला किसी निर्जीव पत्थर को पूजने से क्या लाभ? इससे तो अच्छा है कि घर की चक्की पूजी जाय जिसका पीसा सारा संसार खाता है। यहाँ वे मनुष्य को तार्किक ढंग की वैचारिकता के दर्शन कराते हैं। समाज में विचारशीलता के लोप के कारण ही अज्ञानता बना हुआ है। जब भारत में कट्टर मुसलमान राजाओं का शासन था साम्प्रदायिकता, धार्मिक कट्टरता, अंधविश्वास आदि आडम्बर चरम सीमा पर थे। ऐसे आडम्बरग्रसित समाज में उन्होंने इस्लाम धर्म की जड़ मान्यताओं, खोखली नींव का तीव्र विरोध किया- ''काकड़ पाथर जोरि के, मस्जिद लई बनाय। ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, का बहरा हुआ खुदाय।।'' वे समाज में हिंसा को बढ़ावा देने वाले को निर्भीकता से फटकारते हुए कहते हैं- ''दिनभर रोजा रहत है, राति हनत है गाय। यह तो खून वह बंदगी, कैसे खुसी खुदाय।।'' तत्कालीन समाज में हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही धार्मिक रूप से असहिष्णुता को बढ़ावा दे रहे थे। कबीर अपनी आँखों से देख रहे थे कि समस्त समाज किस प्रकार से दिग्भ्रमित हो रहा है। मूल्यों का अवसान हो रहा है। जातिवाद की मानसिकता से ग्रस्त हिन्दू स्व-जाति, स्वजन की प्रशंसा करते हैं किन्तु किसी अन्य विचार, धर्म, नीति को मानने वाले को गगरी हाथ नहीं लगाने देते। कबीर ने वेश्याओं से संसर्ग को माया कहा है, किन्तु उसी के चरणों में ये पतित पड़े रहते हैं। मुसलमान के पीर-औलिया जीव हिंसा करते हैं और अपने ही घर में सगाई कर लेते हैं। वे उन दोनों धर्मों के आडम्बरों को निशाना बनाते हुए कहते हैं-

''अरे इन दोहुन राह न पाई।

हिन्दू अपनी करै अपनी बड़ाई गागर छुवन न देई।
बेस्या के पायन-तर सोवै यह देखो हिन्दुआई।
मुसलमान के पीर-औलिया मुर्गी मुर्गा खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहै घरहिं में करै सगाई।
बाहर से इक मुर्दा लाए धोय-धाय चढ़वाई।
सब सखियाँ मिलि जेंवन बैठीं घर-भर करै बड़ाई।
हिन्दुन की हिंदुवाई देखि तुरकन की तुरकाई।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो कौन राह ह्वै जाई।।''

कबीर के समय मूल्यों के पतन का मुख्य कारण कर्मकाण्ड था। इसलिए कबीर ने उदात्त मूल्य की स्थापना के लिए कर्मकाण्डों का विरोध आवश्यक समझा। डॉ. रघुवंश लिखते हैं- ''उस समय के समाज का विघटन और उसके मूल्यों की विश्रृंखलता का मूल कारण यह सारा आचार तथा कर्मकाण्ड रहा है। ऐसी स्थिति में कबीर का पण्डित तथा मूल्ला से बार-बार उनके बारे में प्रश्न करना सहज रहा है।''

कबीर पूजा-अर्चना, तीर्थाटन, व्रत- त्योहार तथा रोजा-नमाज को भी बाह्याचार मानते थे। वे कहते हैं कि तीर्थ और व्रत विष के वेलि हैं जो सारे संसार पर मादकता की तरह छाई हुई है। मैंने इसकी जड़ों को काट दिया है, नष्ट कर दिया है। अन्यथा इससे उत्पन्न होने वाले विष फल को खाना पड़ता- ''तीरथ व्रत बिख बेलड़ी सब जग मेल्हा छाइ। कबीर मूल निकंदिया, कौन हलाहल खाई।।'' व्रत-उपवास, तीर्थ-त्योहार, जप-तप, रोजा-नमाज तो मन को परिष्कृत करने के साधन हैं। किन्तु हृदय परिष्कृत नहीं है तो जप-मंजन से क्या होगा? मंदिर-मस्जिद में सिर नवाने से क्या होगा? इसकी सार्थकता तभी है जब हृदय सर्वथा निष्कलुष होगा। कबीर मानवीय-मूल्यों के रक्षार्थ ही यह कहने को विवश होते है कि इसका कारण माया है, जो ठग है- 'माया महाठगिनी हम जानि'। उन्होंने मनुष्य को सात्विक जीवन की राह पर लाने के लिए ही ढोंग, दिखावा, धोखा, कपट, फरेब, प्रपंच, स्वांग, छल, छद्म आदि आडम्बरों- बाह्याचारों पर निर्भीकता से प्रहार किया। आर्थिक भेदभाव भी मनुष्य को एक-दूसरे से दूर करता है। इसलिए अमीर-गरीब का भेद पैदा हुआ था। वे सभी एक तत्त्व से उपजे थे। किन्तु अमीर निर्धन को हेय समझते और निचले तबके या आर्थिक दृष्टि से अभावग्रस्त लोगों को देखते ही अपना मुँह फेर लेते। समाज की विकट स्थिति थी, नैतिकता बोध के खम्भे नित ध्वस्त हो रहे थे। भला वे कैसे चुप रहते। समाज को भेद दिखाई देता है उनको नहीं। समाज की ऐसी दुर्दशा देखकर कबीर ये सच्चाई व्यक्त करते हैं-

''निर्धन आदर कोई न देई। लाख जतन करै ओहू चित न धरेई।
जो निरधन सरधन के जाई। आगे बैठा पीठ फिराई।
जौ सरधन निर्धन के जाई। बीया नादर लिया बुलाई।
निर्धन सरधन दोनों भाई। प्रभु की कला मेटी जाई।
कहि कबीर निर्धन है सोई। जाके हिरदे नाम न होई।।''

सामाजिक रूप से दोनों भाई-भाई है और आध्यात्मिक रूप से जिसके हृदय में दया, ममता, करुणा नहीं उससे बड़ा निर्धन कोई नहीं।

भारतीय सभ्यता सर्वाधिक प्राचीन सभ्यता है। इसके समकालीन सभी सभ्यताएँ अस्तित्वहीन हो चुकी है या अस्तित्व के लिए कठिन संघर्ष कर रही है। भारतीय सभ्यता में आध्यात्मिक जीवन दृष्टि के प्रति विशेष आग्रहशीलता है, जबकि अन्यान्य सभ्यताओं में भौतिकतावादी दृष्टि को सर्वोपरि माना गया है। वर्तमान समाज का आध्यात्मिकता की अपेक्षा भौतिकवादी जीवन के प्रति आग्रह बढ़ता जा रहा है। भौतिकवादी जीवन शैली के कारण हमारे समाज में सांस्कृतिक एवं मानवीय मूल्यों का पतन अत्यंत द्रुतगति से हो रहा है। भोगवादी, उपभोक्तावादी, बाजारवादी संस्कृति ने मनुष्य के आधुनिक भाव-बोध को विकृत कर दिया है जिससे उसकी जगत सम्बन्धी धारणा संकीर्ण हो गई है। आज वह यह मानकर चल रहा है कि इस धरती पर प्रकृति प्रदत्त सभी द्रव्य उसके उपभोग के निमित्त है। वह स्वार्थ में अँधा हो गया है, सही-गलत का तकाजा नहीं है। घोर स्वार्थपरता, जातीय संकीर्णता और श्रेष्ठताबोध ने सामाजिक जीवन से मानवीय मूल्यों के पतन में अहम भूमिका का निर्वहन किया है। यहीं कबीर की वाणी अत्यंत प्रासंगिक जान पड़ती है।

वर्तमान काल में मनुष्य कर्मवादी की अपेक्षा भाग्यवादी बना हुआ। उसके जीवन की सुविधाएँ-असुविधाएँ उसके अच्छे-बुरे कर्मों का ही फल है। इस संसार में जितने भी सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि भेद बनाए गए हैं वे सभी मानव-निर्मित हैं, ईश्वर ने सभी को समान रूप से धरती पर भेजा है। मनुष्य ने भौतिक सुख-सुविधाओं के लिए ही यह भेद निर्मित किया है। कबीर ऐसे वैभव को त्याज्य,

हेय समझते थे। वे तार्किक रूप से समानता के पक्षधर थे। एक मनुष्य के लिए मनसा, वाचा, कर्मणा ही आदर्श जीवन का लक्षण है। इस सन्दर्भ को कबीर अध्येता रामचंद्र तिवारी स्पष्टत: उद्धृत करते हैं- ''मूलत: आध्यात्मिक-नैतिक चेतना से प्रेरित होने के कारण ही कबीर के मन में जिस आदर्श मानव की मूर्ति विराजमान थी वह एक सहज, नैतिक, सात्त्विक ईश्वर भक्त के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। उनकी दृष्टि में आदर्श मानव को ईश्वर में विश्वास करने वाला, संसार के आकर्षणों से विरक्त, समस्त भेद-भाव से परे, सत्यनिष्ठ तथा मन, वाणी और कर्म से एक होना चाहिए। मन की विषयोन्मुखता आदर्श मानव के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है। इसलिए उसे मन को नियंत्रित रखना चाहिए। आदर्श मानव को अहंकार रहित, तत्त्वदर्शी, हंस को तरह नीर-क्षीर विवेकी, चंदन की तरह शीतल और दुर्जनों को भी सज्जन बनाने वाला समत्वबुद्धि संपन्न होना चाहिए।''

धर्म का अन्वेषण मानवता है और मानवता ही ईश्वर तक पहुँचने का साधन है। बिना सत् हृदय के यह जीवन व्यर्थ है। मूल्य पोषित जीवन जीना ही सद् जीवन का उद्देश्य है। यही मनुष्य को उदात्त बनाता है। उसके तार्किक चेतना को प्रदीप्त करती है, विवेक को प्रेरित करती है, प्रेम भावना को स्फूर्ति देती है, सहानुभूति, समानुभूति से संपृक्त बनाती है, सहनशील और संयमी बनाती है, जीवन को मर्यादापूर्ण बनाती है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने लिखा भी है- ''This is the infinite perspective of human personality where man finds his religion- Science may include in its field of knowledge the starry world and the world beyond it, philosophy may try to find some universal principle which is at the root of all things, but religion inevitably concentrates itself on humanity, which illumines our religion, inspires our wisdom, stimulates our love, claims our intelligent service."

कबीरदास मानव मूल्यों के स्निग्ध एवं निर्मल रूप को प्रतिस्थापित करने वाले युग-प्रवर्तक संत हैं। उन्होंने समाज में मानवता के प्रतिस्थापन हेतु तद्युगीन सभी धर्म-दर्शनों के सद्-तत्त्व को ग्रहण कर अपनी विचारधारा निर्मित किया। उनकी इस उक्ति में इसके दर्शन होते हैं- 'सार सार को गहि रहै, थोथा देई उड़ाय'। आज जब समाज की मौलिक जड़ें खोखली होती हुई दिखाई दे रही हैं, सार और थोथा की पहचान एक गंभीर एवं कठिन चुनौती हो गई है। इस चुनौती से पार पाने के लिए अंतरतम (मन, बुद्धि, हृदय, अहंकार) को निर्मल करना होगा, विवेक जाग्रत करना होगा। अन्धकार (भेद-भाव, वैमनस्य आदि कुप्रवृतियाँ) की ओर आकृष्ट करती हैं। कबीर धर्म को अज्ञान के अंधकार से निकालकर ज्ञान के प्रकाश की ओर लाने का प्रयास करते हैं- ''संतौं आई ग्यान की आँधी रे। भ्रम की टाटी सबै उडांणी, माया रहै न बाँधी।।'' आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीरदास का वास्तविक आकलन करते हुए कहा है- ''कबीरदास जी का भक्त रूप ही उनका वास्तविक रूप था। इसी केन्द्र के इर्द-गिर्द उनके अन्य रूप स्वयमेव प्रकाशित हो उठे हैं।'' और वे कभी सुधार करने के फेर में नहीं पड़े। शायद वे अनुभव कर चुके थे कि जो स्वयं सुधरना नहीं चाहता उसे जबरदस्ती सुधारने का व्रत व्यर्थ का प्रयास है।

कबीर समाज को एकसूत्रता स्थापित करना चाहते हैं। वे विभिन्न वर्गों के परस्पर संबंधों, सामाजिक विसंगति-विषमता-विरोध के बीच सूत्रबद्धता, व्यक्ति और समाज के बीच सामंजस्य भाव, आर्थिक विषमताओं के बावजूद नैतिकता को सर्वोपरि रखना, अभावजन्य परिस्थितियों में संतुलन बनाए रखना, सामाजिक एवं मानसिक हीनताबोध आदि यथार्थ तथ्यों का आकलन एवं वर्णन निर्भीकता से करते हैं। उन्होंने अपने अनुभूत सत्य की प्रतिष्ठा के लिए धार्मिक पाखण्ड, अंध-विश्वास और संकीर्णताओं पर जबरदस्त चोट किया। समाज अधोमुखी था, विभिन्न जातियों, वर्णों, धर्मों में नित मतभेद लक्षित होता था। हिंदू अपनी परंपरागत सामाजिक प्रतिष्ठा हेतु सदैव सचेष्ट थे तो मुसलमान अपने को भारतीय समाज में एक प्रमुख स्थान दिलाने के लिए संघर्ष कर रहे थे। रूढ़ियों, परंपराओं, आंडबरों और ढकोसलों के कारण समाज की जड़ें खोखली हो गई थीं। वे समाज को हीन बनाने वाले आडंबरवादी दृष्टि पर कुठाराघात करते हैं-

''यह सब झूठी बंदगी, विरथा पंच निवाज।
साँचौ मोरे झूठ पाहे, काजी करै कजाज।।''

कबीर शास्त्र ज्ञान से अधिक महत्व प्रेम और भक्ति को देते थे। 'आँखिन देखि' पर उनका अगाध विश्वास था। ख्यातिलब्ध आलोचक पुरुषोत्तम अग्रवाल 'कवि कबीर की खोज' नामक आलेख में लिखते हैं- ''कबीर में प्रेम संवेदना भी है, अवधारणा भी। संवेदना के रूप में प्रेम एकदम अकुंठ

है- अपनी लालसाओं में और उसकी अभिव्यक्ति में। अवधारणा के रूप में प्रेम एकदम बुनियादी है- अपने आग्रहों में और उनकी तार्किक परिणति में।'' उन्होंने काजी और पण्डित को फटकारते हुए कहा है- ''पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय। ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।'' वे मूर्तिपूजा की अपेक्षा अभावग्रस्त जन की सेवा को महत्त्व देते हैं। परमात्मा तो घट-घट वासी है। मनुष्य के हृदय में भी परमात्मा का अंश आत्मा का निवास है। कबीर हिंसा-प्रतिहिंसा का विरोध करते हैं। सभी जीव ईश्वर की संतान हैं। किन्तु हैवानियत का यह आलम है कि आज निडरता से एक विवेकशील जीव पारिस्थितिकी-तंत्र के प्रतिकूल किसी दूसरे जीव को मारकर खाता है उनकी कौन गति होगी। कबीर का हृदय शोक और करुणा से भर जाता है। वे आमजन को समझाते हुए कहते हैं-

''बकरी पाती खात है, ताकी काढी खाल।
जो नर बकरी खात है, तिनको कौन हवाल।।''

कबीर की वाणियों का मूल मंत्र मानवता है। वे आदमी को केवल मनुष्य के रूप में देखने के पक्षधर हैं। उन्होंने अपनी वाणियों में मनुष्यत्व पर बल दिया। उनकी इस विशेषता को रेखांकित करते हुए कहा गया है- ''कबीरदास अगर केवल आलोचना और प्रश्न करने तक सीमित रहते तो वे अधिक से अधिक असहमति और विरोध के कवि होते, जैसा कि कुछ लोग कहते हैं। लेकिन वे केवल असहमति और विरोध से आगे बढ़कर समाज में मनुष्यत्व की भावना को विकसित करने और मनुष्य सत्य को प्रतिष्ठित करने के लक्ष्य को सामने रखते हैं।'' कबीरयुग में हिन्दू व मुसलमान दोनों धर्म के पुरोधा जनसामान्य में अनेक पाखण्डों, बाह्याचारों अन्धविश्वासों व कर्मकाण्डों को फैलाकर धर्म को संकीर्ण परिधि में बाँध रहे थे। उन्होंने मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड, तीर्थाटन सहित विभिन्न धार्मिक कार्यों का विरोध करके समाज में व्याप्त अंधविश्वास के विरूद्ध मुखरता से आवाज उठाया। वे हिन्दू धर्म के बाह्याडम्बरों के विरूद्ध कहते हैं-

''कबीर माला काठ की, कहि समझावै ताहि।
मन न फिरावै आपणाँ, कहा फिरावै मोहि।।''

या,

''माला फेरत जुग गया, मिटा न मन का फेर।
कर का मनका डारि कै, मन का मनका फेर।।''

या,

''माला फेरी तिलक लगाया,
लंबी जटा बढ़ाता है।
अंतर तेरे कुफर-कटारी,
यों नहिं साहब मिलता है।।''

कबीर की इन उक्तियों में मानव-मूल्य की स्थापना के सूत्र छिपे हुए हैं। जिनके मन में काम, वासना, स्वार्थ बसा है उसका जीवन किस प्रकार में सत् पक्ष में हो सकता है। इसीलिए वे स्पष्टत: घोषित करते हैं कि जिनके तन और मन दोनों एक हैं उसके साथ ही साहब है- ''जों तन माहैं मन धरै, मन धरि निर्मल होइ। साहिब सों सनमुख रहे; तौ फिरि बालक होइ।। तात्पर्य है कि वे धार्मिक आडम्बरों की बजाय मन की निर्मलता तथा आचरण की शुद्धता को महत्व देते हैं।'' हृदय और मन की शुद्धता तथा निष्कपटता पर कबीर का सहज धर्म आधारित है जिसके लिए न तो बड़े-बड़े वेद- कुरान, इंजिल और बाइबिल के पोथे पढ़ने की आवश्यकता है और न मन्दिर, मस्जिद या गिरजे में जाकर भजन, पूजन, नमाज इत्यादि में समय नष्ट करने की। मन शुद्ध और हृदय निष्कपट होने पर व्यक्ति के आचरण कभी भी असात्विक और धर्म विरूद्ध नहीं हो सकते। इसीलिए कबीर ने पहले मन की शुद्धता और हृदय की निष्कपटता पर बल दिया है।'' वे अन्त:स्थल की साधना पर बल देते हैं। वे कर्मकाण्ड के स्थान पर सदाचरण का मार्ग सुझाते हैं। आचरण की शुद्धता ही सच्चा धर्म है; कुल, धर्म, जाति, वर्ण आदि गौण है- ''ऊँचे कुल का जनमियाँ, जे करणी ऊँच न होइ।'' तथा ''सो हिन्दू सो मुसलमान, जिसका दुरस रहै ईमान।।'' अर्थात् सदुद्देश्य हेतु किया गया कर्म सर्वोच्च है। अगर किसी के ईमान में खोट आ गया, उसका जीवन अन्धकारमय हो जाता है।

मानव मूल्य की प्रतिष्ठा के क्रम में कबीर के आचरण और वाणी में परोपकार के सूत्र लक्षित होते हैं। वे स्वार्थ के वश में पड़े हुए तत्कालीन समाज को परोपकार और लोकहित का ज्ञान कराकर उनमें प्रेम, करुणा और दया रूपी स्थिर भावना का संचार कर विश्रृंखलित हो रहे समाज को एकसूत्रता प्रदान करना चाहते थे, बाँधने का सद्प्रयास करते हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा है- ''वृक्ष कबहुँ नहीं फल भखै, नदी न संचौ नीर। परमारथ के

कारनै, साधुन धर्यो सरीर।।'' अर्थात् वृक्ष स्व-उत्पादित फल का सेवन नहीं करते और साधु परमार्थ हेतु ही शरीर धारण करते हैं। जो व्यक्ति सद्मार्ग से भटक गए हैं उन्हें जीवन में अंत:करण के स्थायी भावों से प्रेरित होकर परोपकार की भावना को प्रश्रय देना चाहिए।

कबीर 'सादा जीवन उच्च विचार' के हिमायती थे। वे कर्मकाण्ड व पाखण्ड आधारित वैराग्य की बजाय सहज प्रवृति को अपनाने का सन्देश देते हैं। केवल चोला बदलना वैराग्य नहीं। संसार नश्वर है। मनुष्य नश्वर वस्तुओं के प्रति अत्यधिक आकर्षित हो रहा है। वह उसी को जीवन का सच्चा सुख मान बैठा है। वे इस तथ्य-सत्य को भली-भाँति उजागर करते हैं- ''ऐसा यहु संसार है, जैसा सैंबल फूल। दिन दस के व्यौहार में, झूठै रंगि न भूल।।'' उनका स्पष्ट मानना था कि तन आत्मा के लिए आवरण मात्र है। यदि कोई व्यक्ति तन के स्थान पर मन से बैरागी हो जाता है तो उसे सहज ही सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं- ''तन को जोगी सब करै, मन का विरला कोई। सब सिधि सहजै पाइए, जे मन जोगी होई।'' कबीर ने गृह त्यागकर वन में जाने की अपेक्षा समाज में रहकर, घर को वन समझकर ही सहज साधना पर बल दिया है- ''बनहिं बसै का कीजिए, जो मन नहिं तजे विकार। घर बन समसारि जिनि किया, ते बिरला संसार।।'' यहाँ सहज साधना से अभिप्राय है ऐसी साधना जिसमें अखिल विश्व का लोकमंगलकारी विधायिनी शक्ति विद्यमान हो। हृदय का स्वच्छंद रूप कबीर को प्रिय है। इसी में सत् तत्त्व का निवास होता है। भारतीय संस्कृति में सत्य का पोषण अन्यतम जीवन मूल्य के रूप में समाकृत है। सत्य का संधान व्यक्ति को अभीष्ट की ओर ले जाता है। जो स्वयमेव प्रकाशित होते हैं, सत्य सर्वदा उसी के साथ अंतर्भुक्त होता है। कबीर के लिए सत्य साधन और साध्य दोनों है। कबीर के मर्मज्ञ डॉ. श्यामसुंदर दास 'कबीर ग्रंथावली में लिखते हैं- ''कविता के लिए उन्होंने कविता नहीं की है। उनकी विचारधारा सत्य की खोज में बही है, उसी का प्रकाश करना उनका ध्येय है।'' उन्होंने सत्य को ईश्वर प्राप्ति का प्रमुख साधन घोषित करते हुए कहा है- ''साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप। जाकै हिरदे साँच है, ताके हिरदे आप।।'' उन्होंने सत्य को सनातन और अनश्वर माना है, मनुष्य को ईश्वर से साक्षात्कार का अन्यतम माध्यम माना है। वे कहते हैं कि सच्चा व्यक्ति सत्य के आचरण से निर्भय व अमर बन जाता है- ''साँचे शाप न लागई, साँचे काल न खाय। साचे को साँचा मिले, साँचे माहि समाय।।''

कबीरकालीन समाज में विभिन्न वर्ग, जाति, संप्रदाय, मत व धर्मादि में अत्यधिक टकराव था। कबीर धार्मिक कट्टरता, वैमनस्य और मजहबी असंतुलन देखकर वे समाज को उदारमना, सहनशील और क्षमस्वी बनने का सन्देश देते हैं- ''क्षमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात। कहाँ विष्णु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात।।'' क्षमा व्यक्ति के व्यक्तित्व को बड़ा बनाता है। जिसके हृदय में करुणा होगी वही क्षमस्वी बन पाता है। तत्कालीन समाज लोभ, मोह, मायादि से ग्रस्त था। संतोष व्यक्ति के चरित्र को उज्ज्वल बनाने का महत्तम उपाय है जिससे उसकी आत्मा दुर्गुणों की जकड़न से बचा रह सकता है। वे ईर्ष्या, निंदा, द्वेष, घृणादि के परिहार हेतु संतोष को एक साधन स्वीकार करते हैं। अगर मनुष्य संतोषी हो तो वह अभाव में भी आनंद का अनुभव कर सकता है। वे संतोष को संसार के सब तरह के धन-ऐश्वर्य से श्रेष्ठ मानते है- ''गोधन, गज-धन, बाजि-धन, और रतन धन खानि। जब आवै सतोष धन, सब धन धूरि समानि।।'' कबीर ईश्वर से माँगते हुए भी संतोष के साथ कहते हैं- ''साईं इतना दीजिए, जामे कुटुंब समाय। मैं भी भूखा न रहूँ, साधू न भूखा जाय।।''

मनुष्य के उज्ज्वल व्यक्तित्व के विकास का बाधक अहंकार है। 'मैं' की भावना 'अहं' को जन्म देती है जिस कारण मनुष्य सद् आनंद से वंचित रह जाता है। सुख की आकांक्षा भौतिक जीवन से करना व्यर्थ है। वह तो क्षणिक है। कबीर व्यक्ति के लिए ईश्वर-प्रेम प्राप्ति हेतु अहंकार शमन को महत्वपूर्ण मानते हैं। अहंकार-दमन से व्यक्ति अपना-पराया, ऊँच-नीच का भेद विस्मरण कर सकता है और तत्कालीन परिस्थितियों के लिए मनुष्य में यह भाव जाग्रत होना आवश्यक था। वे स्पष्टत: कहते हैं- ''जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं। सब अंधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या माहिं।।'' उस समय के समाज में व्याप्त अहंकार जनित भेदभाव को नष्ट करने के लिए 'मैं' भाव का दमन करके वे प्रेम, अहिंसा, करुणा जाग्रत करने का सन्देश देते हैं।

कहा जाता है मनुष्य की जिह्वा पर सरस्वती विराजमान रहती है। जब सरस्वती ज्ञान, बुद्धि देकर भी शांत, शील, संयमी बनी रहती है तो मनुष्य को भी अपनी जिह्वा को उग्र नहीं करना चाहिए। उसे आवेश में अपशब्द का उच्चारण

कदापि नहीं करना चाहिए। संयमित वाणी सज्जन की पहचान है। मनुस्मृति में कहा गया है- 'यथास्योद्विजते वाचा ना लोक्या तामुदीरयेत्'। अर्थात् जिससे दूसरों को व्यथा हो ऐसी लोक-परलोक दोनों को बिगाड़ने वाली वाणी को न बोलना चाहिए। कबीर ने शब्द को 'ब्रह्म' की संज्ञा देते हुए वाणी के संयम को महत्व दिया। वे व्यक्ति को मीठी वाणी बोलने के लिए कहते हैं- ''ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय। औरन को सीतल करें, आपहुँ सीतल होय।।'' अर्थात् व्यक्ति ऐसी वाणी बोले जिससे स्वयं और श्रोता दोनों शीतलता का अनुभव करें। कबीर के ऐसे उपदेश के कारण ही देवप्रकाश मिश्र कहते हैं- ''मनुष्यता को पहचानने के सम्बन्ध में कबीर महामानव थे। मानवता पोषक किसी भी जाति, धर्म से उनकी मित्रता हो सकती थी। मानवता की विघटनकारी शक्तियों से उनकी दुश्मनी थी। जहाँ वे एक ओर पंडित और योगी को फटकारते हैं वहीं दूसरी ओर मौलवी और फ़कीर की खबर लेने में उन्हें फक्र का अनुभव होता था।''इसी प्रकार आलोचक डॉ. बच्चन सिंह अपने ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' में कबीर के समाज-धर्म की परिकल्पना को उद्धृत करते हुए लिखते हैं- ''वे एक ऐसे धर्म की स्थापना करना चाहते थे जिसमें न कोई हिन्दू हो न मुसलमान, न कोई मौलवी हो न पुरोहित, न कोई शेख हो न ब्राह्मण, सब मनुष्य हो।''

कबीर के सम्पूर्ण काव्य-दर्शन का केंद्र मानवीय-मूल्य है और उसी मूल्य के आधार पर विभिन्न समस्याओं के समाधान का संधान करते हैं। उनकी मानवतावादी दृष्टि और समकालीन युग में उनकी वाणी की प्रांसगिकता के सम्बन्ध में डॉ. बलदेव वंशी कहते हैं- ''कबीर के पास कालजयी सोच के साथ मानवतावादी सिद्ध दृष्टि और समुद्र से गहरी संवेदना है। मानव-मुक्ति के लिए विस्तीर्ण आकाश जैसा विश्वास है तो अस्तित्व रक्षा के लिए अगाधमयी शस्य-श्यामला अक्षय जीवनी कोशमयी धरती। कबीर प्रेम और करुणा के अवतार हैं। धरती के अंतिम प्राणी और प्रगति की निष्कलुष वाणी हैं। महलों की बेचैनी और शोषण के सामने खड़े हुए झोपड़ी का संतोष और ईमान है।'' इनके दर्शन में माया-मोह-विनिर्मुक्तता, ऐन्द्रिक संयमादि के साथ ही जिज्ञासा, श्रद्धा, विश्वास, अहन्मयता का अद्‌भुत संगम है। कर्मवाद का सिद्धांत मानव जीवन का मूलाधार है और इसी पर उसका अस्तित्व निर्भर है। मानव और मानवेत्तर प्राणियों के प्रजन्म का आधार कर्म ही है। इसलिए जो इस जन्म में मनुष्य है वह अगले जन्म में कर्म के कार्य-कारण सम्बन्ध के आधार पर मानव या मानवेत्तर प्राणी के रूप में जन्म लेता है। कबीर का दर्शन नैतिक व्यवस्था पर बल देता है और कर्मकांडों का जमकर विरोध करता है। उनके अनुसार मानव वही है जो दूसरों के प्रति भी विवेकशील, विचारशील, मध्यमार्गी, अहिंसक, सत्यानुगामी, सारग्राही, समदर्शी, उदारमना व क्षमस्वी है। वस्तुत: उनका सम्पूर्ण साहित्य मानव मात्र के भीतर मानवपन को जाग्रत करने का अविराम-अविस्मरणीय यात्रा है।

सहायक पुस्तकें :

1.तिवारी, रामचंद्र, कबीर-मीमांसा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण- 1999

2.द्विवेदी, हजारीप्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, उन्नीसवीं आवृति : 2014

3.दास, डॉ. श्यामसुंदर, कबीर ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पचीसवाँ संस्करण, संवत् 2064

4.टैगोर, रवीन्द्रनाथ, द रिलिजन ऑफ मैन, पृष्ठ- 114

5.राजकिशोर, संपादक, कबीर की खोज, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2001

6.वंशी, डॉ. बलदेव, आध्यात्मिक वैश्वीकरण और कबीर (आलेख), कबीर : एक पुनर्मूल्यांकन

7.मिश्र, देवप्रकाश, मसि कागद छुयो नहीं . कबीर

8.सिंह, डॉ. बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण : 2017

संपर्क : प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, सेंट पॉल्स कैथेड्रल मिशन कॉलेज, 33/1, राजा राममोहन राय सारणी, अम्हर्स्ट स्ट्रीट, कोलकाता- 700009, मोबाइल नं. 9932232314, ईमेल- pkp2202@gmail.com

परमजीत कुमार पंडित,

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,

सेंट पॉल्स कैथेड्रल मिशन कॉलेज, कोलकाता

संत कबीर के पदों में प्रतीकात्मकता और भाषा शिल्प : एक अनुशीलन

- कुमारी शिखा

"संत कबीर का साहित्य एकात्मता, सत्य, प्रेम और प्रतिरोध की साहित्यिक भाषा है। वे प्रतीकों, जनभाषा एवं अनुभव के सहारे जीवन के सार को प्रकट करते हैं। उनका प्रेम-दर्शन, पांडित्य-विरोध और भाषिक सौंदर्य उन्हें कालजयी बनाते हैं। कबीर केवल संत नहीं, एक वैचारिक आंदोलन हैं जो आज भी उतना ही जीवंत है जितना तब था।"

शोध सारांश

संत कबीर भारतीय भक्तिकाव्य परम्परा के अप्रतिम कवि है, जिनकी वाणी में सूफी, योगी और संत परम्पराओं का अनूठा संगम दिखाई देता है। उनके पदों में प्रयुक्त प्रतीकों एवं रूपकों के माध्यम से आध्यात्मिक सत्य, सामाजिक रूढिवादी एवं मानवीय संवेदनाओं को सहज गूढ़ ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। संत कबीर ने अपने पदों के माध्यम से भक्ति, ज्ञान और सामाजिक चेतना का संगम प्रस्तुत किया। यह शोध-पत्र कबीर की पद-रचना में निहित प्रतीकात्मकता और भाषा शिल्प साहित्यिक का अनुशीलन करता है, जिसमें उनके काव्य की सघनता, बहुस्तरीय, अर्थवत्ता तथा जन संप्रेषणीयता को समझा गया है। विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण के साथ संत कबीर की कविता में प्रयुक्त प्रतीकों का अर्थ-ग्रहण और उनकी काव्यभाषा की विशेषताओं का विवेचन इस शोध का मुख्य ध्येय है।

बीज शब्द

संत कबीर, प्रतीकात्मकता, भाषा शिल्प, भक्तिकाव्य, रूपक, सामाजिक चेतना, सांप्रदायिकता विरोध, निर्गुण भक्ति, संत काव्य, काव्य-विधान

प्रस्तावना

भारतीय संत काव्य परम्परा में कबीरदास नाम एक सामाजिक क्रांतिकारी रूप में प्रसिद्ध हैं। उन्होंने जिस काल में जन्म लिया, वह धार्मिक जड़ताओं, सामाजिक विषमताओं तथा सांप्रदायिक विभाजन से युक्त था। कबीरदास (1440-1518) हिन्दी साहित्य के मध्यकालीन भक्तिकाल में संत कबीर एक ऐसी अद्वितीय चेतना हैं जिन्होंने न केवल धार्मिक आडम्बरों पर करारी चोट की, साधारण जनमानस की भाषा में गहन आध्यात्मिक सत्यों को प्रस्तुत किया। उन्होंने धर्म, जाति, पंथ, संप्रदाय की सीमाओं को तोड़ते हुए एक समन्वयवादी दृष्टिकोण का प्रयास किया है। संत कबीर का काव्य केवल भक्ति की परम्परा तक सीमित नहीं अथवा बौद्धिक विमर्श का भी विषय है। उनकी वाणी में जो प्रतीकात्मकता और भाषा शिल्प है, उन्हें अन्य संत कवियों से अलग और विशिष्ट बनाती है। कबीर की कविता एक ओर जहाँ ब्रह्म की अनुभूति, आत्मा की खोज और प्रेम की तीव्रता को रूपायित करती है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक विडम्बनाओं, जातिगत भेदभाव एवं रूढ़िवादी धार्मिक संस्थाओं का विरोध भी करती हैं। यही द्वैतमुक्त द्वंद्वात्मक चेतना उनके साहित्य को समकालीन और शाश्वत दोनों बनाती है। कबीर की वाणी साखी, सबद और रमैनी के रूप में संकलित है, जिनमें गूढ़ आध्यात्मिक विचारों को अत्यंत सहज प्रतीकों और गूढ़ भाषा शिल्प में व्यक्त किया गया है। कबीर की वाणी भाषा और भाव दोनों की दृष्टि से उच्च कोटि की है, जिसमें प्रतीकों, रूपकों, मिथकों और व्यंजनाओं का अद्‌भुत प्रयोग मिलता है तथा उनका काव्य सामाजिक क्रांति और आध्यात्मिक ज्ञान का वाहक है। कबीर की पदावली में प्रयुक्त प्रतीकात्मकता और भाषा शिल्प का साहित्यिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। कबीर किसी एक मत या सम्प्रदाय में सीमित नहीं रहते। वे निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं और संत मत के प्रमुख प्रवर्तक। उनकी काव्यदृष्टि में अध्यात्म, सामाजिक समरसता और मानवता का गहन बोध है। संत कबीर के अनुसार ईश्वर किसी एक रूप में नहीं बल्कि प्रत्येक प्राणी में है। "जा घटि पिंडि निरंजनि राखा।" अर्थात् उनकी काव्य-भूमि में रहस्यवाद और मानवीय चेतना का अद्वितीय समन्वय है। इसी दार्शनिक चेतना के संप्रेषण हेतु वे प्रतीकों और सशक्त भाषा-शिल्प का आश्रय लेते हैं कबीर के पदों में प्रयुक्त प्रतीक जैसे मछली, जल, बूँद, साहिब, जुलाहा, ढाई आखर, रमता राम इत्यादि शब्द मात्र नहीं बल्कि आत्म अनुभूति और सांस्कृतिक यथार्थ के वाहक हैं। ये प्रतीक उनकी वाणी में ऐसे तत्त्व बनकर आते हैं जो पाठक को बहुपरत अर्थों तक ले जाते हैं। उनकी भाषा परम्परागत साहित्यिक भाषा नहीं है। कबीर की भाषा 'साधक की भाषा' है जिसमें अवधी, ब्रज, भोजपुरी, खड़ी बोली, पंजाबी, राजस्थानी आदि बोलियों का समन्वय है। इस मिश्रित और सहज भाषा के माध्यम से उन्होंने अत्यंत जटिल और दार्शनिक विषयों को भी सरल और प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त किया है। यही कारण है कि कबीर का साहित्य न केवल उच्च अध्ययन का विषय है, बल्कि लोकमन का गान भी बन गया है।

प्रस्तुत शोध पत्र में गुणात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। शोध निहित प्रतीकात्मकता और भाषा-शिल्प की साहित्यिक विशेषताओं का विश्लेषण करता है। इसके साथ ही कबीर पर लिखे गए आलोचनात्मक ग्रंथों, शोध-लेखों, टीकाओं, भाष्य-ग्रंथों और

प्रामाणिक द्वितीयक स्रोतों को अध्ययन में सम्मिलित किया गया है। पदों में प्रयुक्त प्रतीकों के वर्गीकरण के साथ-साथ उन प्रतीकों की सांस्कृतिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण भी किया गया है।

शोध का विस्तार

संत कबीर की प्रतीकात्मकता का स्वरूप संत कबीर की प्रतीकात्मकता बहुस्तरीय और बहुआयामी है। उन्होंने सामान्य प्रतीकों के माध्यम से जटिल आध्यात्मिक और सामाजिक विचारों को सहज रूप में प्रस्तुत किया है। कबीर के प्रतीक उनके यथार्थ, कल्पना और अनुभव के समन्वय से निर्मित हैं। उनकी भाषा में प्रतीकों का प्रयोग आध्यात्मिक अनुभूतियों को संप्रेषित करने का सशक्त माध्यम है। सांसारिक वस्तुओं, क्रियाओं एवं सम्बन्धों को प्रतीक बनाकर कबीर आत्मज्ञान, ब्रह्मबोध और माया-मोह जैसे गूढ़ विषयों को सरलता से अभिव्यक्त करते हैं। कबीर की वाणी में प्रयुक्त प्रमुख प्रतीकों को निम्नलिखित रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है आत्मा और ब्रह्म के प्रतीक, प्रेम के प्रतीक, माया-मोह के प्रतीक, तथा सामाजिक यथार्थ के प्रतीक। उनकी प्रतीकात्मकता केवल काव्य-सौंदर्य नहीं, बल्कि उनके दर्शन, अनुभव और विचारधारा की मूल आधारशिला है। कबीर की भाषा में प्रत्यक्ष कथन कम होते हैं, जबकि व्यंजना और प्रतीकात्मक शैली के माध्यम से ही अर्थ प्रकट होता है। मछली, बूँद, साहिब, माया, मोह, सामाजिक विषमता और आध्यात्मिक प्रेम जैसे विषयों को कबीर सरल एवं सारगर्भित ढंग से प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं।

जल-नाव-सागर

''जा मरने से जग डरे, मेरे मन आनंद।
कब मरिहूँ कब पाईहूँ, पूर्ण परमानंद।।''

अर्थात् 'मरने' का प्रतीक है अहंकार और व्यक्तित्व की ममता के विनाश का, जो आध्यात्मिक मुक्ति की ओर ले जाता है। जो आत्मज्ञान की ओर ले जाता है। 'नाव' आत्मा का प्रतीक है, 'सागर' ब्रह्म का और 'जल' संसार का।

इस त्रिवेणी प्रतीक पद्धति में अध्यात्मिक यात्रा का वर्णन किया गया है। इस त्रिसूत्रीय प्रतीक योजना में कबीर ने यह संकेत दिया है कि जब तक 'अहं' (स्वत्व) की मृत्यु नहीं होती, तब तक आत्मा ब्रह्म से एकाकार नहीं हो सकती। इसलिए मृत्यु सांसारिक नहीं, अपितु 'आध्यात्मिक मृत्यु' है।

सूई, धागा और कारीगर

''सूई धागा साधि करि, टांकी सब संसार।
कहे कबीर यह राम की माया,
देखत भरम जाए संसार।।''

अर्थात् 'सूई' आत्मा की प्रतीक है, जो अत्यंत सूक्ष्म, परिश्रमी और आंतरिक यात्रा करने में समर्थ। 'धागा उस कर्म का प्रतीक है, जो आत्मा को जगत से जोडता है, और 'कारीगर' यानी शिल्पकार स्वयं ईश्वर का बिंब है,जो इस संपूर्ण विश्वरचना का रचयिता है। इस प्रतीक में सृष्टि की निर्मिति का आध्यात्मिक भाव समाहित है। इस प्रतीकात्मकता में कबीर संसार की संरचना को 'शिल्पकारी प्रक्रिया' के रूप में प्रस्तुत करते हैं जहाँ ईश्वर सूक्ष्मतम साधनों द्वारा जीवन की कढ़ाई करता है। यहाँ यह भी संकेत है कि माया के विविध रूपों को देख कर मानव भ्रमित हो जाता है, जबकि वह एक विराट योजना का सूक्ष्म हिस्सा मात्र है।

पानी और मछली

''जल में कुंभ कुंभ में जल है,
बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना,
यह तथ्य कहे गयानी।।''

अर्थात् कुंभ और जल का प्रतीक अद्वैतवाद को व्यक्त करता है। आत्मा और परमात्मा का भेद मायाजाल है, मूलत: वे एक ही तत्व हैं।जब घड़ा फूटता है, अर्थात् जब शरीर की सीमा समाप्त होती है या अहं का भेदन होता है, तब जल जल में विलीन हो जाता है। यह प्रतीकात्मकता बताती है कि आत्मा और परमात्मा में कोई भिन्नता नहीं है जो भीतर है वही बाहर है।

जुलाहा और ताना-बाना

''ज्यों तिल माहि तेल है, ज्योंचक्खी में गुड़।
तैसे ही हरि बसै, घट ही के भीतर।।''

संत कबीर स्वयं जुलाहा थे, अत: चर्खा, ताना-बाना, गांठ, सूत आदि उनके काव्य में बार-बार आते हैं। ये प्रतीक सांसारिक अनुभवों से आध्यात्मिक सत्य को समझने का माध्यमहैं। यहाँ कबीर का मूल संदेश है कि परमात्मा की प्राप्ति के लिए कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं, वह तो हमारे ही भीतर विद्यमान हैआवश्यकता केवल 'अंतर्मुखी साधना' की है।

उलटबाँसी

संत कबीर की उलटबाँसियाँ प्रतीकात्मकता का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। उनमें व्याकरणिक असाम्यता के साथ प्रतीक-प्रसंगों की बहुलता होती है जो पाठक को बौद्धिक चुनौती देती है।कबीर कहते हैं कि जब तक साधक अपने भीतर के अहंकार, मोह, लोभ आदि को नहीं जलाता, तब तक वह ईश्वर की संगति का अधिकारी नहीं बन सकता।

''जा घर जारै आपना, चले हमारे साथ।
जा घर जारै आपना, ता आवै हमारे पास।।''

यहाँ 'घर' प्रतीक है शरीर या अहंकार का जिसे जलाकर ही साधक कबीर की अध्यात्म-यात्रा का सहभागी बन सकता है। कबीर कहते हैं कि जब तक साधक अपने 'घर' अर्थात् अपने अहं, स्वार्थ और सांसारिक आसक्तियों को नहीं जलाता, तब तक वह सच्चे आध्यात्मिक मार्ग पर नहीं चल सकता। यह 'उलटबाँसी' गूढ़ है परंतु स्पष्ट करती है कि ईश्वर तक पहुँचने के लिए 'आत्म-नाश' अनिवार्य है।

व्यंजनात्मकता और सृजनशीलता

संत कबीर की वाणी में व्यंजनात्मकता का अत्यंत गहन प्रयोग है। वे संकेतों और संकेत-चित्रों से अधिक गहरा अर्थ व्यक्त करते हैं। उनका काव्य मूलत: प्रतीकात्मक काव्य है, जिसमें पाठक को अर्थ निकालने की प्रक्रिया में सहभागी होना पड़ता है। कबीर की वाणी में व्यंजनात्मकता का अत्यंत गहन और प्रभावशाली प्रयोग मिलता है। वे सीधे-सीधे उपदेश नहीं देते, बल्कि संकेतों, प्रतीकों और रूपकों के माध्यम से गूढ़ आध्यात्मिक अर्थ व्यक्त करते हैं। उनके पदों में प्रयुक्त प्रतीक-बिम्ब पाठक को तत्काल अर्थ न देकर एक विवेचनात्मक प्रक्रिया की माँग करते हैं, जिससे अर्थ की गहराइयों तक पहुँचना संभव होता है। यह प्रक्रिया पाठक की चेतना को झकझोरती है और उसे आत्ममंथन की ओर उन्मुख करती है। कबीर कहते हैं

''पानी में मीन प्यासी रे!
मोहे सुन-सुन आवे हासी रे!''

यह पद मात्र एक सांसारिक विरोधाभास नहीं दर्शाता, बल्कि आत्मा की स्थिति को दर्शाने वाला गूढ़ प्रतीक है। यहाँ 'मछली (मीन)' आत्मा का प्रतीक है, जो सदा जल (परमात्मा या ब्रह्म) में स्थित होते हुए भी, उससे अनभिज्ञ बनी रहती है। यह प्रतीक आत्मा की 'अज्ञानता' और उसकी 'ईश्वर से विमुख स्थिति' को दर्शाता है। कबीर यहाँ व्यंग्य करते हैं कि जो आत्मा अपने भीतर ब्रह्म की उपस्थिति होते हुए भी उसे नहीं पहचानती, वह एक हास्यास्पद स्थिति में है। यह एक आध्यात्मिक जागरण की पुकार है। यहाँ मछली (मीन) आत्मा का प्रतीक है, और जल ब्रह्म का इस विरोधाभास में आत्मा की अज्ञानता पर कटाक्ष है।

भाषा शिल्प का विवेचन

संत कबीर की भाषा उनके समय की सामाजिक-सांस्कृतिक स्थिति से गहराई से जुड़ी हुई है। उनकी वाणी किसी एक परंपरा की भाषा नहीं, बल्कि 'जनभाषा' की मिली-जुली अभिव्यक्ति है, जिसमें 'खड़ी बोली, अवधी, ब्रजभाषा, भोजपुरी और पंजाबी' तक के शब्दों का सुंदर समावेश है। वे किसी कृत्रिम या पंडितीय भाषा का प्रयोग नहीं करते, बल्कि लोक-प्रचलित बोलचाल की भाषा को ही अपने विचारों का माध्यम बनाते हैं। उनकी भाषा में अनुभव की तीव्रता है, और वह अनुभव प्रतीकों में लिपटी हुई एक 'सघन काव्यात्मक ज्वाला' के रूप में प्रकट होती है। यही कारण है कि उनकी वाणी सहज होते हुए भी बहुस्तरीय अर्थ प्रदान करती है।कबीर की भाषा उनके सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों से सीधे जुड़ी हुई है। उनकी भाषा में न केवल अनुभव की तीव्रता है, बल्कि वह प्रतीकों से लिपटी हुई एक सांकेतिक शैली भी है।

मिश्रित लोक भाषा का प्रयोग

संत कबीर की भाषा किसी एक विशेष बोली तक सीमित नहीं है।कबीर की भाषा सधुक्कड़ी कही जाती है, जो ब्रज, अवधी, भोजपुरी, खड़ी बोली, राजस्थानी और पंजाबी के शब्दों का मिश्रण है, की शब्द-संपदा का समन्वय करते हुए एक 'सामूहिक लोकभाषा' का प्रयोग किया है। यह भाषा उनके समय की बहुभाषिक संस्कृति को प्रतिबिंबित करती है। उन्होंने जिस भाषा में अपनी वाणी प्रकट की, वह शास्त्रीय संस्कृत या अरबी-फारसी नहीं थी बल्कि लोकमानस से जुड़ी सहज और संप्रेषणीय भाषा थी। यह मिश्रित भाषा-शैली उनकी कविताओं को जनसामान्य तक पहुँचाने में सहायक बनी तथा यही कारण है कि कबीर की वाणी आम जनमानस के हृदय में गहराई से समाहित हो गई।

लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग

संत कबीर ने जनजीवन में प्रचलित लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रभावशाली प्रयोग किया है। इससे उनकी वाणी को सरलता, प्रभावशीलता और गहराई प्राप्त हुई है।

''बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलियाकोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय।।''

यहाँ एक प्रचलित कहावत के रूप में 'आत्मालोचना' का संदेश छिपा है। यह लोकोक्ति की शैली में जीवन के गहरे सत्य को उजागर करती है,कि बुराई बाहर नहीं, भीतर छिपी होती है।इस पद में आत्मावलोकन का संदेश है, जो लोकोक्ति की शैली में सहज संप्रेषित होता है।

अनुप्रास, यमक, विरोधाभास और प्रतीक धर्मिता

संत कबीर के पदों में अनुप्रास (एक वर्ण की पुनरावृत्ति), यमक (एक ही शब्द के दो अर्थों का प्रयोग) तथा प्रतीकों की भरपूर उपस्थिति मिलती है। ये सभी काव्य सौंदर्य को बढ़ाते हैं, साथ ही सामाजिक चेतना को जागृत करने वाले बिम्ब भी रचते हैं। उनकी प्रतीक योजना केवल आध्यात्मिक ही नहीं, बल्कि सामाजिक क्रांति का माध्यम भी है। वे जातिवाद, पाखंड और धार्मिक आडंबर पर करारा प्रहार करते हैं। उदाहरण के लिए:कबीर के प्रतीक न केवल आध्यात्मिक हैं, बल्कि सामाजिक विद्रोह के उपकरण भी हैं। वे जातिवाद, पाखंड और धार्मिक दुराचारों पर सीधे आघात करते हैं:

''माटी एक देह सब, बाम्हण सूद्र एक।
कौन बाम्हण, कौन सूद्र है,
कहाँ उपजत नेक।।''

यहाँ 'माटी' का प्रतीक सबको एकसमान मूल बताने हेतु प्रयुक्त है। भाषा में सीधापन, तीखापन और तात्कालिक सामाजिक सच को उद्घाटित करने की क्षमता है।यहाँ 'माटी' का प्रयोग एक गहरे 'प्रतीक' के रूप में किया गया है, जो सबके मूल को एक समान दर्शाता है। कबीर की यह भाषा सजीव, सहज, और यथार्थ पर आधारित है। वे तर्क और भावना दोनों को समाहित करके ऐसी अभिव्यक्ति रचते हैं, जो न केवल सुनने में आकर्षक होती है, बल्कि विचारों में भी क्रांति लाने का सामर्थ्य रखती है। कबीर की भाषा में शब्दों का लयात्मक, व्यंजनात्मक तथा आलंकारिक प्रयोग हुआ है:

बहुस्तरीय अर्थवत्ता एवं साहित्यिक की अवधारण

संत कबीर की भाषा में अर्थ की बहुस्तरीयता है। वे अपने शब्दों में गूढ़ दर्शन को भी व्यक्त करते हैं। यह उनकी भाषा-शिल्प की विशेषता है कि प्रत्येक पद का अर्थ साधारण से गूढ़ की ओर अग्रसर होता है। संत कबीर की वाणी में जितनी तीव्र अनुभूति है, उतनी ही कलात्मकता भी। उनकी काव्यकला शब्दों की सजावट से नहीं, भावों की तीव्रता और प्रतीकों की व्यंजना से समृद्ध होती है। वे क्लिष्ट शब्दों से नहीं, बल्कि संवेदना से सृजन करते हैं। उनकी प्रतीकात्मक भाषा 'सत्य को उजागर करने वाली भाषा' बन जाती है। आलोचक हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, ''कबीर का काव्य लौकिक प्रतीकों से अलौकिक सत्व को प्रकट करने की साधना है।'' कबीर का साहित्य अनुभूति, सामाजिक विवेक और कलात्मकता का त्रिवेणी संगम है। उनकी वाणी में-

''हिंदू कहे मोहि राम पियारा,
तुरक कहे रहमाना।
आपस में दोउ लरि मुए,
मरम न कोउ जाना।।''

यह पद वर्तमान में भी उतना ही प्रासंगिक है जितना कबीरकालीन था। संत कबीर का साहित्य एकात्मता, सत्य, प्रेम और प्रतिरोध की साहित्यिक भाषा है। वे प्रतीकों, जनभाषा एवं अनुभव के सहारे जीवन के सार को प्रकट करते हैं। उनका प्रेम-दर्शन, पांडित्य-विरोध और भाषिक सौंदर्य उन्हें कालजयी बनाते हैं। कबीर केवल संत नहीं, एक वैचारिक आंदोलन हैं जो आज भी उतना ही जीवंत है जितना तब था।

निष्कर्ष

संत कबीर का काव्य भारतीय काव्य परम्परा का अद्वितीय और विलक्षण अध्याय है, जहाँ प्रतीकात्मकता और भाषा शिल्प एक-दूसरे के पूरक बनकर आध्यात्मिकता और सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनते हैं। उनकी वाणी जहाँ एक ओर ब्रह्म की अभिव्यक्ति है, वहीं दूसरी ओर शोषित और पीड़ित मानवता की आवाज भी है। कबीर के प्रतीक उनके अनुभवों के जन्म हैं, और उनकी भाषा उस अनुभव की लयात्मक अभिव्यक्ति। इस प्रकार कबीर का काव्य केवल पठन का नहीं, अपितु आत्मचिंतन का विषय बन जाता है। कबीर प्रतीकों के माध्यम से जहाँ परम तत्व को अनुभव करने का मार्ग सुझाते हैं, वहीं भाषा के माध्यम से जनचेतना को जाग्रत करते हैं। उनके प्रतीक चाहे वे जल, मछली, सूत, चर्खा एवं जुलाहा हों, सभी अपने भीतर व्यापक दार्शनिक एवं सामाजिक निहितार्थ समेटे हुए हैं। कबीर की भाषा-शैली उनकी विचारधारा के समान ही सरल, सहज किन्तु अत्यंत प्रभावशाली है। वह न केवल भक्तिकाव्य की परंपरा में, बल्कि आधुनिक काव्य में भी प्रासंगिक बनी रहती है। यह शोध इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि कबीर की काव्य भाषा और प्रतीकात्मकता साहित्यिक सौंदर्यबोध के साथ-साथ दार्शनिक और सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम भी है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. द्विवेदी हजारी प्रसाद, कबीर. राजकमल प्रकाशन, 2005
2. शुक्ल, रामचंद्र. हिन्दी साहित्य का इतिहास. लोक भारती प्रकाशन, 2016
3. त्रिपाठी विश्वनाथ, भक्ति आंदोलन और कबीर. वाणी प्रकाशन, 2012
4. मैथिल विजय कबीर, व्यक्तिव और काव्य, प्रभात प्रकाशन, 2001
5. यादव शिवकुमार, कबीर की काव्य-भाषा और प्रतीक विधान, साहित्य अकादमी, 2014
6. उपाध्याय हरीश, कबीर की प्रतीक योजना और भाषिक शिल्प, भारतीय ज्ञानपीठ, 2008
7. Das Sisir Kumar,A History of Indian Literature: 500–1399AD. SahityaAkademi, 2005
8. Lorenzen David N, Kabir Legends andAnanta-Das's Kabir Parachai. SUNY Press, 1991
9. Vaudeville Charlotte, Kabir: The Poet and His World. Oxford University Press, 1993
10. HussainAjmal, Kabir and His Followers. Publications Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, 1998
11. McLeod W.H. The Sants: Studies in a Devotional Tradition of India. Motilal Banarsidass, 1995
12. कर्ण सुनील, कबीर की कविता में सामाजिक चेतना, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2013
13. मिश्रा सच्चिदानंद, कबीर: एक पुनर्पा,. भारतीय साहित्य परिषद, 2011
14. भारद्वाज अरुणकुमार, हिन्दी भक्तिकाव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, साहित्य भवन, 2007
15. Encyclopaedia of Indian Literature. Ed.Amaresh Datta. SahityaAkademi, 1988–1994
16. कबीरदास. कबीर ग्रंथावली. सं. हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2009
17. मिश्र गोविंद, कबीर प्रतीक और संवेदना. लोकभारती, इलाहाबाद, 1995
18. शुक्ल प्रभाकर. कबीर की भाषा. वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2001

कुमारी शिखा
पी.एच्.डी (बौद्ध अध्ययन)
साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय,
साँची, रायसेन,(म.प्र.) 464661

वर्तमान सन्दर्भ में कबीर के आध्यात्मिक विचारों की प्रासंगिकता

- डॉ. पूनम प्रजापति

"कबीर अद्वैतवादी थे और सम्पूर्ण सृष्टि में ईश्वर की व्यापकता को देखते थे। निर्मल मन रखकर जो भी प्रभु से मिलने की ललक रखता है उन्हें वे अवश्य मिलते हैं। आज मनुष्य संवेदन शून्य और अमानवीय हो गया है। आतंकवाद, भ्रष्टाचार, बलात्कार, चोरी, लूंट, अराजकता जैसे जघन्य अपराधों से घिरा है। ऐसे समय में कबीर के विचार मनुष्य को मनुष्य बनने की प्रेरणा देते है।"

मध्ययुगीन संत कवियों में कबीर को एक धर्मालोचक कवि के रूप में जाना जाता है। कबीर की धर्म संबंधी आलोचना आज भी उतनी ही प्रासंगिक दृष्टिगत होती है जितनी तब थी। इससे बड़ी विडम्बना क्या होगी कि कबीर ने जो कहा वह अपने समाज के अनपढ़-रुढ़िग्रस्त लोगों और पढ़े-लिखे विद्वानों-पंडितों के पाखंडों को सामने रखकर कहा और आज भी हमारा पढ़ा-लिखा, डिग्रीधारी, तथाकथित आधुनिक विकसित समाज ज्यों का त्यों हैं। इससे बड़ी आश्चर्यजनक बात और क्या हो सकती है कि एक मध्यकालीन संत इक्कीसवीं सदी के साधुओं, विद्वानों की करनी की पोल खोलता है और लोगों के पाखंडों पर सीधा प्रहार करता हो। हमारा समाज आज भी धर्म के नाम पर आडम्बर-प्रियता, पूजा-पाठ, मंदिरों-मस्जिदों में बैठे पंडितों-मुल्लाओं के झूठे दावों, ताबीजों, मंत्रों-तंत्रों में उलझा है। मानव सहज दुर्वृत्तियों के कारण मानव समाज में आज भी विसंगतियाँ विद्यमान है। कबीर ने अपने युग की जिन जिन विसंगतियों पर व्यंग्य किया था, वह वर्तमान में भी उतना ही प्रासंगिक, सार्थक एवं सटीक प्रतीत होता है मानव सहज दुर्वृत्तियों के कारण मानव समाज में आज भी विसंगातियाँ विद्यमान है।

कबीर के इष्ट 'निर्गुण राम' है, जो माया से रहित है और उनकी प्राप्ति दुरूसाध्य है। कबीर जिस राम की दुहाई देते थकते नहीं वह राम आखिर है कौन? परमब्रह्म, ईश्वर या कुछ और? आचार्य हजारी प्रसाद द्विदेदी ने कबीर के इष्ट को रूपायित करते हुए लिखा है -"उनका 'अल्लाह' निरंजन देव है जो सेवा से परे है; उनका 'विष्णु' वह है जो संसार रूप में विस्तृत है; उनका 'गोविन्द' वह है जिसने ब्रह्मण्ड को धारण किया है; उनका 'राम' वह है जो सनातन तत्व है; उनका 'खुदा' वह है जो दास दरवाजों को खोल देता है; 'रब' वह है जो चौरासी लाख योनियों का परवरदिगार है; 'करीम' वह है जो इतना सब कर रहा है; 'गोरख' वह है जो ज्ञान से गम्य है; 'महादेव' वह है जो मन की जानता है। अनन्त है उसके नाम, अपरम्पार है उसका स्वरूप।"1

कबीर की दृष्टि में केवल मंदिर में मूर्ति के भीतर ईश्वर को और मस्जिद के भीतर खुदा को स्वीकार करना ईश्वर और खुदा दोनों की तौहीन है। उन्होंने किसी भी जाति, धर्म या वर्ण से ऊपर उठकर केवल मानवता को सर्वोपरि माना है और ऐसे समाज की रचना की कल्पना की है जो कुरीतियों, रूढ़ियों, कर्मकांडों, आडम्बरों साम्प्रदायिकता एवं अन्धविश्वासों से मुक्त हो। कबीर ने पौराणिक हिन्दू धर्म के बाह्याडम्बरों, रूढ़ियों, मूर्तिपूजा, व्रत, तिलक, माला फेरना, ब्राह्मणों के कर्मकाण्ड आदि को ढकोसला बताते हुए उन पर तीखा प्रहार किया है-

"कबीर माला काठ की, कहि समझावै तोहि।
मन न फिरावै आपणो, कहा फिरावै मोहि।।"2

कबीर ऐसे साधु-संतों की आलोचना करते हैं जो हाथ में माला लेकर भगवे वस्त्र धारण कर प्रभु के स्मरण मात्र का दिखावा करते है। ऐसे लोग भोली-भाली जनता को मूर्ख बनाकर अपने स्वार्थों को सिद्ध करते है और कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि आज भी यह व्यापर ज्यों का त्यों जारी है।

कबीर ने मुसलमानों के कृत्यों का भी पर्दाफ़ाश किया है। उन्होंने मुसलमानों के ज़ोर से बांग देना, रोजा रखना, पशुओं की हत्या कर मांस खाना आदि पर तीखा व्यंग्य किया है। वे लिखते हैं-

"दिन भर रोजा रहत है, रात हनत है गाय।
यह तो खून वह बंदगी, कहूँ क्यों खुशी खुदाय।।"3

कितना विरोधाभास प्रतीत होता है मनुष्य की कथनी और करनी में, इसका सटीक दृष्यान्त देखा जा सकता है। एक ओर रोजा रखकर खुदा की बंदगी और दूसरी ओर निर्मम पशु हत्या। कबीर अत्यधिक ज़ोर कथनी और करनी की एकरूपता पर देते हैं। हमारा तत्कालीन समाज भी इसी दलदल में फँसा हुआ है। अनपढ़ से लेकर बुद्धिजीवियों तक हर व्यक्ति की कथनी और करनी में जमीन-आसमान का अंतर दिखलाई पड़ता है। इस बात

का प्रमाण उनका खुद का जीवन है कि उनकी कथनी यदि रूढ़ियों, आडम्बरों और अंधविश्वासों के विरोधी है तो उनकी करनी भी वही थी इसीलिए कबीर काशी को छोड़कर मगहर में चले गए थे। वह इस अन्धविश्वास का विरोध करना चाहते थे कि जो मनुष्य मगहर में मरता है, वह नरक में जाता है। उम्रभर इस अन्धविश्वास का विरोध करते रहे और जीवन के अंतिम समय में भी इससे पीछे नहीं हटे। कबीर का मानना है कि जिस मनुष्य की कथनी और करनी में एकरूपता होती है प्रभु की कृपा भी उन्हीं पर बरसती है।

'सर्व धर्म सम भाव' एक भारतीय अवधारणा है, जो धर्मनिरपेक्षता का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है। कबीर के धार्मिक विचार एकेश्वरवादी थे, जो मानव-मानव के बीच खाड़ी विभेद की हर दीवार को ध्वस्त करना चाहते है। न वो सांप्रदायिक भेदभाव को मान्यता देते है न मंदिर-मस्जिद के भेद को स्वीकारते है। उन्होंने 'राम' और 'रहीम' जैसे विभिन्न नामों से एक ही ईश्वर की बात कही है और सभी मनुष्यों में समानता का सन्देश दिया है। कबीर मानते हैं कि ब्रह्म एक तत्व है, उसी के अलग-अलग नाम हैं। उनका मानना है कि मूर्ख जन सारतत्व तो पहचानते नहीं और नाम की भिन्नता के आधार पर फिरके बना लेते है और एक-दूसरे के उलझते रहते हैं। कबीर एक ही ब्रह्म की उपासना का उपदेश देते हैं-

दुई जगदीस कहाँ ते आया, कहु कवने भरमाया।
अल्लह राम करीमा केसो, हजरत नाम धराया।।"4

वर्तमान समय की प्रमुख समस्याओं में से सबसे बड़ी समस्या धार्मिक कट्टरता ही है। धर्म के नाम पर आज जहाँ देखो आतंकवाद फैला हुआ है। धार्मिक कट्टरता ने आज मानवता को खंडित किया और उसे खोखला बना दिया है। आतंकवाद आज न केवल व्यक्तिगत जीवन और समुदायों को प्रभावित कर रहा है बल्कि वैश्विक असुरक्षा को भी बढ़ावा दे रहा है। कबीर मानवता को सभी धर्मों में सर्वोपरि मानते है और उस बात को समाज में स्थापित करने के लिए जीवनपर्यंत प्रयत्नशील रहे, अगर इस बात को मनुष्य ने आत्मसात किया होता तो विश्व आज धार्मिक कट्टरता रुपी आतंकवाद और उसके दुष्प्रभावों का शिकार न होता। कबीर ने अपने विचारों के माध्यम से धार्मिक एकता और सांप्रदायिक सद्भावना की स्थापना का प्रयास किया है। उन्होंने धार्मिक आधार पर संघर्ष को व्यर्थ ठहराकर वास्तविक अर्थ में मानवीयता को परिभाषित किया है।

कबीर अद्वैतवादी थे और सम्पूर्ण सृष्टि में ईश्वर की व्यापकता को देखते थे। निर्मल मन रखकर जो भी प्रभु से मिलने की ललक रखता है उन्हें वे अवश्य मिलते हैं। आज मनुष्य संवेदन शून्य और अमानवीय हो गया है। आतंकवाद, भ्रष्टाचार, बलात्कार, चोरी, लूंट, अराजकता जैसे जघन्य अपराधों से घिरा है। ऐसे समय में कबीर के विचार मनुष्य को मनुष्य बनने की प्रेरणा देते है। कबीर मनुष्य को ईश्वर से आसक्त होने के लिए उन्हें हर कण में, प्रत्येक मनुष्य में विद्यमान बताते हैं। उनके इस विचार को देखिये-

"मोकों कहाँ ढूँढ़े बंदे, मैं तो तेरे पास में।
मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में।
ना तो कौन क्रिया-कर्म में, नहीं योग बैराग में।
खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं, पल भर की तलास में।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, सब स्वाँसों की स्वाँस में।।5"

कबीर मूलत: आध्यात्मिक व्यक्ति थे। कबीर ने अपने समय को जिस अध्यात्मिक दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया, उसकी आवश्यकता ही वर्तमान सन्दर्भ में उनकी प्रासंगिकता को स्थापित करती है। इक्कीसवीं सदी का वैज्ञानिक उपकरणों से सजे मानव धीरे-धीरे आध्यात्मिकता से कटता जा रहा है। हमारा शिक्षित समाज सामाजिक कुसंस्कारों, अन्धविश्वासों, धार्मिक पाखंडों और कर्मकांडों से ग्रस्त है। इस दृष्टिकोण से यदि देखा जाए कबीर के अध्यात्मिक विचार वर्तमान सन्दर्भ में व्यक्तित्व एवं भारत के नव-निर्माण में प्रयोजनीय एवं प्रासंगिक सिद्ध होंगे।

सन्दर्भ सूची :

1. कबीर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ क्रमांक-126-27
2. कबीर ग्रंथावली, संपादक-डॉ.पुष्पपाल सिंह, पृष्ठ क्रमांक-19
3. कबीर ग्रंथावली, संपादक-डॉ.पुष्पपाल सिंह, पृष्ठ क्रमांक-487
4. कबीर बानी, अली सरदार जाफ़री, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ क्रमांक-106
5. कबीर बानी, अली सरदार जाफ़री, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ क्रमांक-31

डॉ. पूनम प्रजापति

असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग, श्रीमती आर.डी.शाह आर्ट्स एण्ड श्रीमती वी.डी.शाह कॉमर्स कॉलेज

धोलका- 382225 (अहमदाबाद)

चलभाष - 9904064493

आंबेडकरवादी साहित्य पत्रिका के प्रतिनिधि

1. डॉ. नविला सत्यादास (पंजाब) 9463615861
2. श्यामलाल राही (बरेली, उत्तर प्रदेश) 9456045567
3. डॉ. राम मनोहर राव (बरेली, उत्तर प्रदेश) 7060240326
4. डॉ. रमेश कुमार (गुजरात) 9719025700
5. डॉ. सुरेश सौरभ गाजीपुरी (गाजीपुर, उत्तर प्रदेश) 9452846472
6. सुरेश कुमार राजा (बाँदा, उत्तर प्रदेश) 8756140206
7. रघुबीर सिंह 'नाहर' (राजस्थान) 9413058580
8. अश्वनी कुमार (लखनऊ, उत्तर प्रदेश) 9450159443
9. डॉ. बी.आर. बुद्धप्रिय (बरेली, उत्तर प्रदेश) 9412318482
10. डॉ. मुकुंद रविदास (झारखण्ड) 7488199101
11. डॉ. परसराम रामजी रगडे (महाराष्ट्र) 9850492933
12. भिक्खु संघविजय (बिहार) 8539003521
13. मनोहर लाल 'प्रेमी' (लखनऊ, उत्तर प्रदेश) 8887792827
14. राधेश प्रताप 'विकास' (इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश) 9956824322
15. कर्मशील भारती (दिल्ली) 9968297866
16. नारायण राव 'प्रबुद्ध' (चंदौली, उत्तर प्रदेश) 9005441713
17. मेजर लाल बिहारी प्रसाद (कुशीनगर, उत्तर प्रदेश) 9450241748
18. पिंटू कुमार गौतम (गाजीपुर, उत्तर प्रदेश) 8543901668

'आंबेडकरवादी साहित्य' पत्रिका की सदस्यता हेतु विवरण

सदस्यता शुल्क :

वार्षिक : 350/-	त्रैवार्षिक : 1000/-
द्विवार्षिक : 650/-	आजीवन : 7000/-

भुगतान विकल्प :

Bank Account Number	: 35332395763
Account Holder	: Devachandra Bharati
Bank Name	: STATE BANK OF INDIA
IFSC Code	: SBIN0012302
paytm PhonePe GPay	: 9454199538

डॉ. बी.आर. बुद्धप्रिय वरिष्ठ आंबेडकरवादी साहित्यकार, चिंतक एवं इतिहासकार हैं। इन्होंने दर्जन भर पुस्तकों का लेखन एवं संपादन किया है। धम्म-यात्राएं करने में इनकी विशेष रुचि है। ये सामाजिक, साहित्यिक, शैक्षिक एवं धार्मिक आदि सभी क्षेत्रों में सक्रिय रहते हैं।

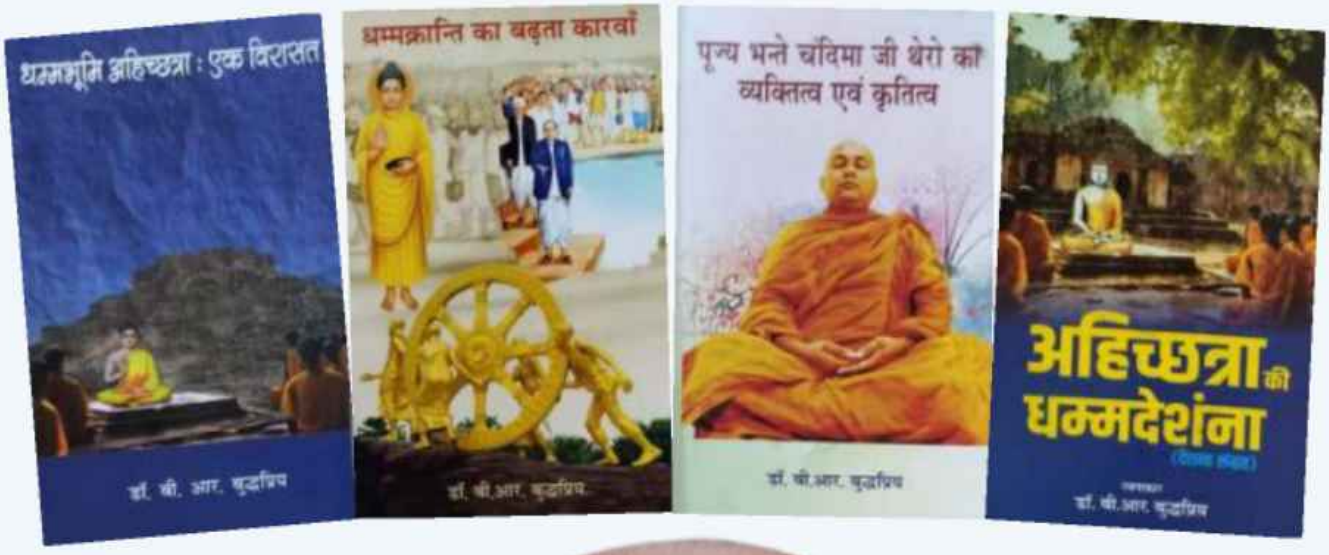

पुस्तकें प्राप्त करने हेतु संपर्क करें : आंबेडकरवादी साहित्य प्रकाशन लखनऊ

7983154558

जनपद फतेहपुर की तहसील खागा के ब्लॉक हथगाम के सुदूर ग्रामीण अंचल में बसे आंबेडकर-ग्राम चक इटैली में 28 वर्ष पूर्व यहीं के निवासी सेवानिवृत्त ए.डी.ओ. एवं महाकवि परिनिब्बुत विश्वेश्वर प्रसाद जी द्वारा स्थापित यह शिक्षण संस्थान वर्तमान में डॉ. आर.एम. राव मनोहर के प्रबंधन में 14 योग्य शिक्षक -शिक्षिकाओं के कुशल अध्यापन कार्य से सुचारु रूप से चल रहा है। इसकी अनेक विशेषताओं में से प्रमुख हैं :

1. यू पी बोर्ड द्वारा संचालित हाई स्कूल परीक्षा का सतत 95% या अधिक परिणाम ।
2. उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परिषद द्वारा हाई स्कूल तक मान्यता प्राप्त स्कूल में सभी वर्ग के बच्चों का प्रवेश ।
3. नाम मात्र का शुल्क।
4. उच्च कोटि का अनुशासन।
5. 50% से अधिक बालिकाओं का प्रवेश एवं उनके लिए अलग शौचालय आदि की व्यवस्था।
6. इंग्लिश मीडियम नर्सरी।
7. नर्सरी और प्राइमरी हेतु अलग भवन तथा विशाल प्रांगण ।
8. बिजली, पानी, फर्नीचर की व्यवस्था।
9. अति निर्धन बच्चों की निःशुल्क शिक्षा।
10. खेलकूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन।

संपर्क : प्रबंधक - डॉ. राम मनोहर राव, मो. 7060240326